ओ३म्

# दयानन्द चित्रावली



॥ ओ३म् ॥

# श्रीमद्दयानन्द चित्रावली

अर्थात्

## ऋषि दयानन्द का सचित्र जीवन-चरित्र

सम्पादक

पण्डित रामगोपाल विद्यालङ्कार

( भू०पू० सम्पादक 'वीर अर्जुन' दिल्ली )

वैदिक-ज्ञान-प्रकाश के गरिमापूर्ण 87 वें वर्ष पर
विशेष प्रकाशित ( 1925–2012 )





विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द
4408, नई सड़क, दिल्ली–110006
दूरभाष : 23977216 E-mail : ajayarya16@gmail.com
Website : www.vedicbooks .com



विक्रमाब्द 2068 सन् 2012 ई०

# ओ३म् का झण्डा

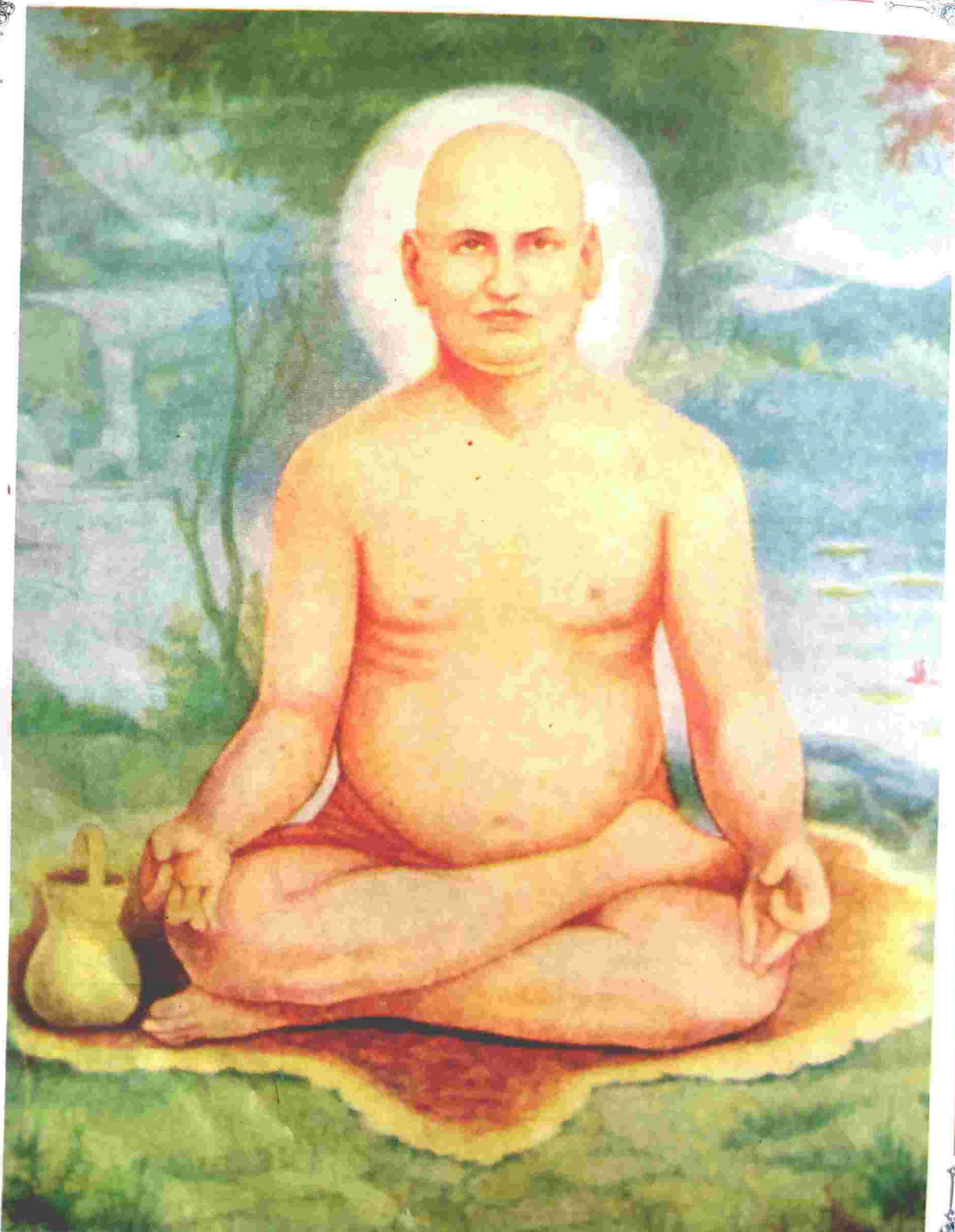
यह ओ३म् का झण्डा आता है, सोने वालो जाग चलो !
लेकर उगते रवि की लाली
ले नित्य वसन्ती हरियाली।
यह ले ले लहरें आता है,
धरती के जागे भाग चलो ॥
यह ओ३म् का झण्डा आता है, सोने वालो जाग चलो !
जब गोली गोले बरसेंगे,
यह सर कट कट कर सरसेंगे।
हम मौत के भीषण आँगन में,
हँस हँस खेलेंगे फाग चलो ॥
यह ओ३म् का झण्डा आता है, सोने वालो जाग चलो !
पर्वत से कह दो नम जाये,
सागर से कह दो थम जाये।
यह एक बनाने दुनिया को,
उमड़ा है अब अनुराग चलो ॥
यह ओ३म् का झण्डा आता है, सोने वालो जाग चलो !
अब प्रेम सचाई विद्या का,
यह झण्डा लहराया बाँका।
हिंसा पाखण्ड अविद्या से,
कह दो अब तुम भाग चलो !
यह ओ३म् का झण्डा आता है, सोने वालो जाग चलो !

भूमे मातर्नि देहि मा भद्रया सुप्रतिष्ठितम्। सविदाना दिवा कवे श्रिया माधेहि भूत्याम्। 'अथर्व'

## भारत माता




उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।



महर्षि दयानन्द सरस्वती

## ॥श्रीमद्दयानन्दाष्टकम् ॥

वेदाऽभ्यासपरायणो मुनिवरो वेदैकमार्गे रतः।
नाम्ना यस्य दया विभाति निखिला तत्रैव यो मोदते ॥
येनाम्नायपयोनिधेर्मथनतः सत्यं परं दर्शितम्।
लब्धं तत्पदपद्मयुग्ममनघं पुण्यैरनन्तैर्मया ॥१ ॥

भाषा (छन्द सवैया)

(१) उत्तम पुरुष भये जग जो वह धर्म के हेतु धरें जग देहा।
धन धाम सभी कुर्बान करें प्रमदा सुत मीतरु कांचन गेहा ॥
सन्मारग से पग नाहिं टरे उनकी गति है भव भीतर एहा।
एक रहे दृढ़ता जग में सब साज समाज यह होवत खेहा ॥

(२) इनके अवतार भये सगरे जगदीश नहीं जन्मा जग माहीं।
सुखराशि अनाशी सदाशिव जो वह मानव-रूप धरे कभी नाहीं ॥
मायिक होय वही जन्मे यह अज्ञ अलीक कहें भव माहीं।
यह मत है सब वेदन का वह भाष रहे निज बैनन माहीं ॥

(३) धन्य भई उनकी जननी निज भारत आरत के दुख टारे।
रवि ज्ञान प्रकाश किया जग में अब अन्धनिशा के मिटे सब तारे ॥
दिन रात जगाय रहे हमको दुःखनाशक रूप पिता जो हमारे।
शोक यही हमको अब है जब नींद खुली तब आप पधारे ॥

(४) वैदिक भाष्य किया जिनने, जिनने सब वैदिक भेद मिटाये।
वेद ध्वजा कर में करके जिनने सब वैर विरोध नसाये ॥
वैदिक धर्म प्रसिद्ध किया मत-वाद जिते सब दूर हटाये।
डूबत हिन्द जहाज दिखा अब जासु कृपा कर पार कराये ॥

(५) जाप दिया जगदीश जिन्हें इक, और सभी जप धूर मिलाये।
धूरत धर्म धरातल पै जिनने सब ज्ञान की आग जलाये॥
ज्ञान प्रदीप प्रकाश किया उन गप्प महातम मार उड़ाये।
डूबत हिन्द जहाज दिखा अब जासु कृपा कर पार कराये॥

(६) सो शुभ स्वामी दयानन्द जी जिनने यह आर्य्य धर्म प्रचारा।
भारतखण्ड के भेदन का जिन पाठ किया सब तत्त्व विचारा॥
वैदिक पंथ पै पाँव धरा उन तीक्ष्ण धर्म-असि की जो धारा।
ऐसे ऋषिवर को सज्जनो कर जोड़ दोऊ अब वन्द हमारा॥

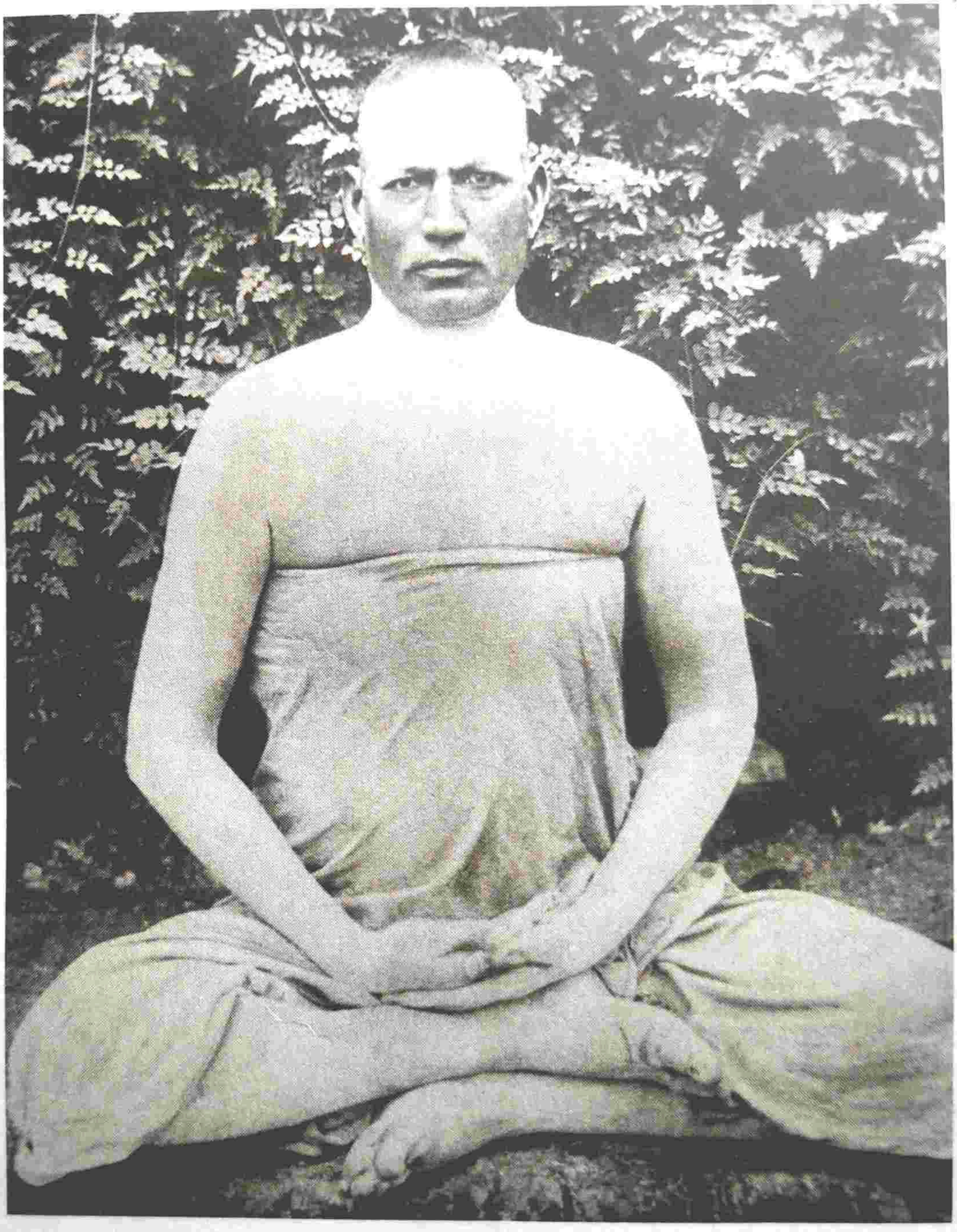
(७) व्रत वेद धरा प्रथमे जिसने पुन भारत धर्म का कीन सुधारा।
धन धाम तजे जिसने सगरे औ' तजे जिसने जग में सुत धारा॥
दुःख आप सहे सिर पै उसने पर भारत आरत का दुःख टारा।
ऐसे ऋषिवर को सज्जनो कर जोड़ दोऊ अब वन्द हमारा॥

(८) वेद प्रचार किया जिनने और गप्प महातम मार विदारा।
आप मरे न टरे सतपंथ से दीनन का निज दुःख निवारा॥
आन उद्धार किया हमरा जो गिरें अब भी तो नहीं कोई चारा।
ऐसे ऋषिवर को सज्जनो कर जोड़ दोऊ अब वन्द हमारा॥

(९) आगम और निरागम का, जिन भेद कहा सब तत्त्व बताया।
मायिक रूप हटाय दिया, उन एक अखण्ड को मण्ड दिखाया॥
यज्ञ दयादि दिये जिसने तज हिंसक यज्ञ सुयज्ञ रचाया।
सो शुभ स्वामी दयानिधि के पद पंकज से मुमि ने फल पाया॥

—पं० आर्यमुनि

¤ ¤



आदित्य ब्रह्मचारी स्वामी दयानन्द सरस्वती
यह चित्र खतौली जिला मुजफ्फरनगर निवासी श्री मामराज सिंह जी के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।
श्री मामराज सिंह जी को यह सन् १९२६ में मेरठ से प्राप्त हुआ था।
यह चित्र आर्य गजट लाहौर के सम्वत् १९८३ के ऋषि-अंक में भी छपा था।



महर्षि दयानन्द का यह चित्र जबलपुर म० प्र० में सन् १८७४ ई० में श्रीयुत कृष्णराव जी एक्सट्रा असिस्टेन्ट कमिश्नर ने महर्षि जी को अपने मकान पर आमन्त्रित करके खिंचवाया था।

ओ३म्

महर्षि दयानन्द के जीवन-चरित का

# चित्रमय दिग्दर्शन

श्री स्वामी दयानन्द जी का जन्म-स्थान काठियावाड़ के मोरवी राज्य में टंकारा ग्राम है। उनके पिता का नाम कर्षन जी था। वे जन्म से औदीच्य ब्राह्मण थे। उनके देर से कोई सन्तान नहीं होती थी। अतः सं० १८८१ में प्रथम पुत्र उत्पन्न होने पर बहुत खुशी मनाई गई। बड़ा उत्सव मनाया गया और बालक का नाम मूलजी रखा गया। मूलजी को लोग दयालजी भी कहकर पुकारा करते थे। उनका पूरा नाम 'मूलशंकर' था।

महर्षि ने अपना जो जीवन-चरित लिखा है उसमें वे स्वयं लिखते हैं कि—

"(सं० १८८५) मैंने पाँचवें वर्ष में देवनागरी अक्षर पढ़ना आरम्भ किया था और मुझको कुल-रीति की शिक्षा भी माता-पिता आदि दिया करते थे। बहुत-से धर्म-शास्त्रादि के श्लोक और सूत्रादिक भी कण्ठस्थ कराया करते थे।"

"(सं० १८८८) फिर आठवें वर्ष में मेरा यज्ञोपवीत कराके गायत्री-सन्ध्या और उसकी क्रिया भी सिखा दी गई और मुझको यजुर्वेद की संहिता का आरम्भ कराके उसमें से प्रथम रुद्राध्याय पढ़ाया गया था। मेरे कुल में शैव मत था, उसकी शिक्षा भी दिया करते थे और पिता आदि लोग यह भी कहा करते थे कि पार्थिव पूजन अर्थात् मिट्टी का लिंग बनाकर तू पूजा कर, और मेरी माता कहा करती कि यह प्रातःकाल भोजन कर लेता है, इससे पूजा कभी न हो सकेगी। पिता हठ किया करते थे कि पूजा अवश्य करनी चाहिए क्योंकि कुल की रीति है। पिता जी अपने साथ मुझको जहाँ-तहाँ मन्दिर और मेल-मिलापों में ले जाया करते और यह भी कहा करते थे कि उपासना सबसे श्रेष्ठ है।"

"(सं० १८९४) जहाँ-जहाँ शिवपुराण आदि की कथा होती थी वहाँ पिता जी मुझको पास बैठ कर सुनाया करते थे और घर में भिक्षा की जीविका नहीं

थी, किन्तु जमींदारी और लेन-देन से जीविका का प्रबन्ध करके सब काम चलाते थे और मेरे पिता ने माता के मना करने पर भी पार्थिव पूजन का आरम्भ कर दिया था।"

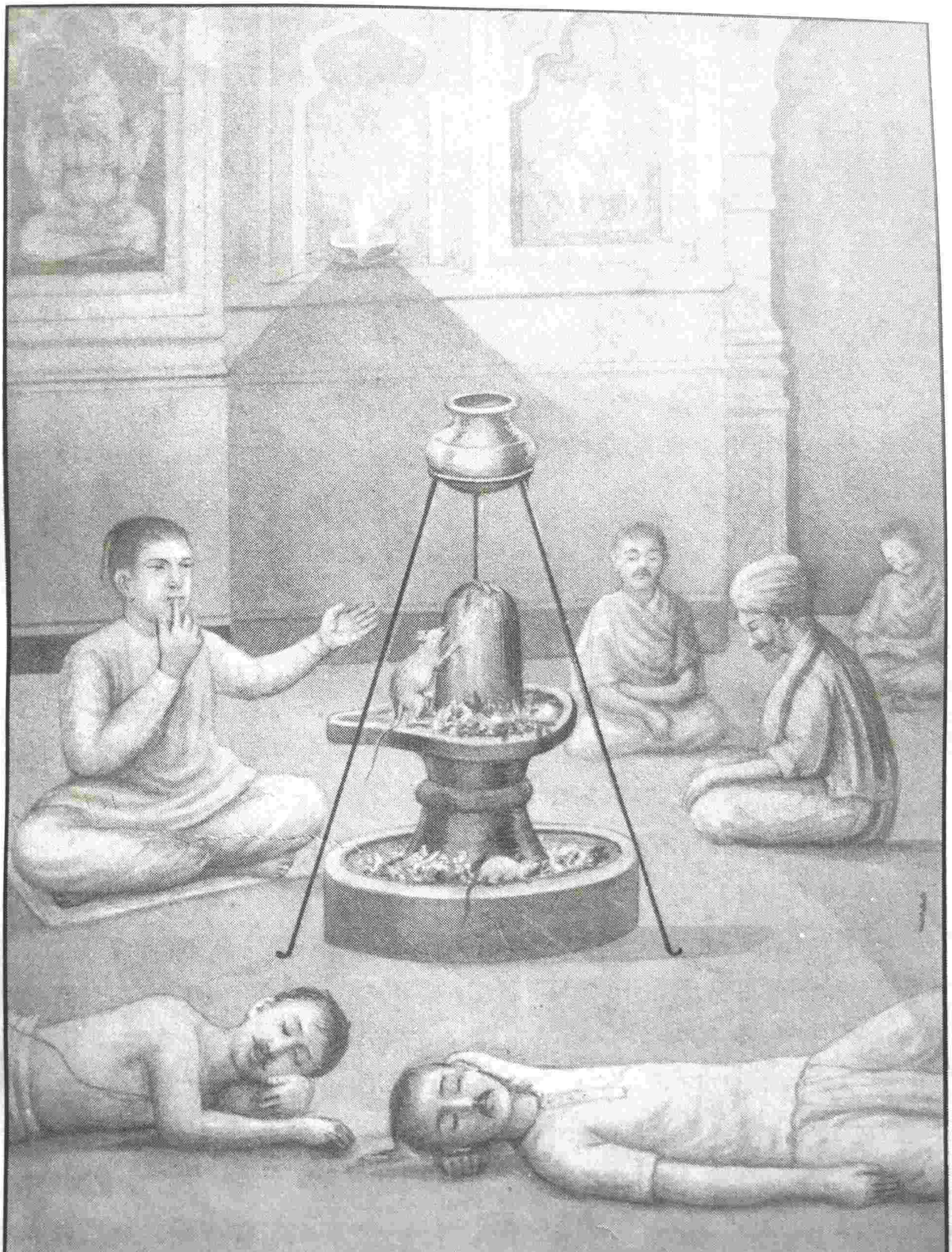
¤ ¤

## शिवरात्रि व्रत और ऋषि-बोध

"मेरे पिता ने इस वर्ष मुझे शिवरात्रि का व्रत रखने को कहा परन्तु मैं उद्यत न हुआ। जब शिवरात्रि आई तब पिताजी ने त्रयोदशी के दिन कथा का माहात्म्य सुनाकर शिव-रात्रि का व्रत करा दिया था। वह कथा मुझे प्रीतिकर लगी, तभी मैंने उपवास का दृढ़ निश्चय कर लिया। परन्तु माता ने मना किया था कि इससे व्रती न रहा जायेगा।"

"जब चतुर्दशी की शाम हुई तब बस्ती के बड़े-बड़े रईस अपने पुत्रों के सहित मन्दिर में जागरण को गये। वहाँ मैं भी अपने पिता के साथ गया। १२ बजे के अनन्तर लोग जहाँ-तहाँ मारे औंघ के झूमने लगे और शनैः-शनैः सब लेट गये। मैंने सुन रखा था कि सोने से शिव-रात्रि का फल नहीं होता है। इसलिए आँखों में छींटे मारकर जागता रहा। फिर पिता जी आदि सब सो गये।"

"इतने में एक ऐसा चमत्कार हुआ कि मन्दिर के बिल से एक ऊंदर (चूहा) बाहर निकल पिण्डी के चारों ओर फिरने लगा और पिण्डी के अक्षत आदि पर चढ़कर खाने भी लगा। मैं तो जागता ही था, अतः मैंने सब लीला देखी। उस समय मेरे चित्त में भिन्न-भिन्न प्रकार के विचार उत्पन्न हुए और प्रश्न पर प्रश्न उठने लगे। तब मुझको शंका हुई कि जिसकी कथा हमने सुनी थी क्या वे यही महादेव हैं या अन्य? क्योंकि वह तो मनुष्य के समान एक देवता है, वह बैल पर चढ़ता, चलता, फिरता, खाता, पीता, त्रिशूल हाथ में रखता, डमरू बजाता, वर और शाप देता और कैलास का मालिक है, इत्यादि इस प्रकार का महादेव कथा में सुना था। अतः चूहे की लीला देख मेरी बाल-बुद्धि को कुछ ऐसा प्रतीत हुआ कि जो शिव अपने पाशुपतास्त्र से बड़े-बड़े दैत्यों को



शिवरात्रि का पूजन और ऋषि बोध।

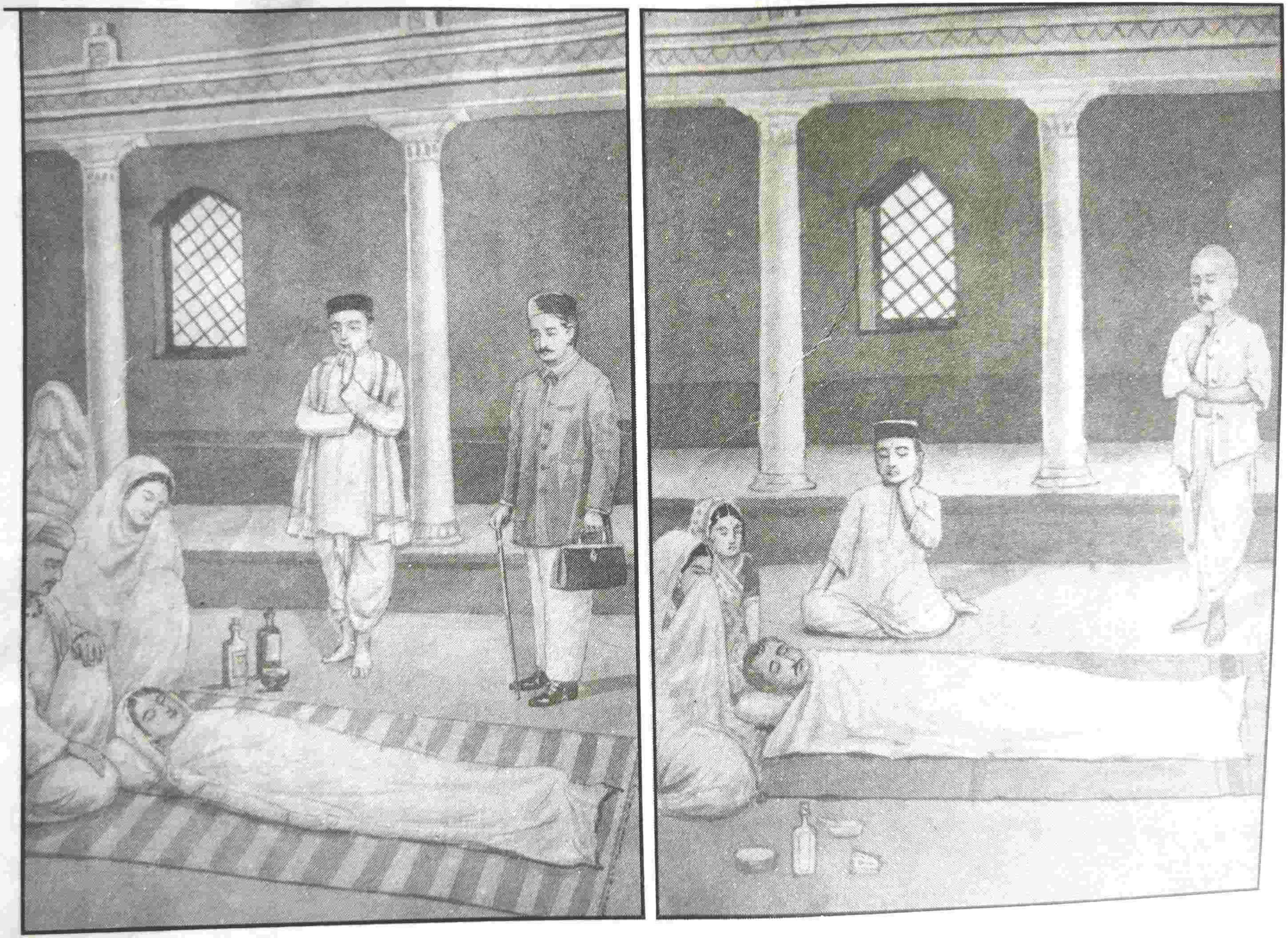
मारता है क्या उसमें एक निर्बल चूहे को भगा देने की शक्ति भी नहीं है?" ऐसा तर्क मन में उठने पर बालक मूलशंकर ने अपने पिता को जगाकर शंका-निवृत्ति करनी चाही, परन्तु उनके उत्तरों से बालक को सन्तोष न हुआ। इस पर पिता ने बालक को सिपाही के साथ घर भेज दिया और वहाँ पर जाकर पिता के मना कर देने पर भी मूलशंकर ने मिठाई खाकर अपनी भूख मिटाई। इस घटना के अतिरिक्त मूलशंकर के मन को चलायमान करने वाली दो घटनाएँ और हुई।

¤ ¤

## भगिनी तथा चाचा की मृत्यु और मृत्युञ्जय बनने का दृढ़ सङ्कल्प

मूलजी से छोटी दो बहिनें और दो भाई थे। उनमें से बड़ी बहिन को हैज़ा हुआ जिसके विषय में महर्षि स्वयं लिखते हैं–

"जब मेरी १८ वर्ष की अवस्था हुई थी तब मुझसे छोटी १४ वर्ष की जो बहिन थी उसको हैज़ा हुआ। वैद्य आदि बुलाए गए, औषध भी दी गई, तथापि चार घण्टे में उसका शरीर छूट गया। मैं उसकी शय्या के पास दीवार का आश्रय लेकर खड़ा रहा। जन्म से उस समय तक मैंने यही प्रथम बार मनुष्य को मरते देखा था। इससे मेरे हृदय पर वज्रपात हुआ। मन में भय उत्पन्न हो आया कि देखो, संसार में कुछ भी नहीं। इसी प्रकार किसी दिन मैं भी मर जाऊँगा। उस समय मृत्यु के दुःख के निवारणार्थ औषध कहाँ ढूँढता फिरूँगा और मुक्ति प्राप्त करने के निमित्त किस पर भरोसा करूँगा और कौन-सा उपाय उसके लिए उचित है? सारांश यह कि उसी समय पूर्ण विचार कर लिया कि जिस प्रकार हो सके मुक्ति हस्तगत करूँ जिसके द्वारा मृत्यु-समय के समस्त दुःखों से बचूँ। अन्त को यही हुआ कि संसार से मेरा मन एक बार ही हट गया और उत्तम कार्य करने में सन्नद्ध हो गया।"



भगिनी तथा चाचा की मृत्यु और मूलशंकर के मृतयुंजय बनने का दृढ़ संकल्प।

थोड़े ही दिन पश्चात् उनके प्रिय चाचा की मृत्यु की घटना होती है जिसके विषय में महर्षि स्वयं लिखते हैं कि—

"१८९९ संवत् में १८ वर्ष की अवस्था हो गई। तब जो मुझसे अति प्रेम रखने वाले बड़े धर्मात्मा, बुद्धिमान्, विद्वान् मेरे चाचा थे उनको विशूचिका ने आ घेरा। मरते समय उन्होंने मुझे पास बुलाया। लोग उनकी नाड़ी देखने लगे। मैं भी समीप बैठा हुआ था। मेरी ओर देखते ही उनकी आँखों से अश्रुपात होने लगा। मुझे भी उस समय बहुत रोना आया; यहाँ तक कि रोते-रोते मेरी आँखें फूल गईं। इतना रोना मुझे पूर्व कभी नहीं आया था। उस समय मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि मैं भी चाचा जी के सदृश एक दिन मरने वाला हूँ। उनकी मृत्यु होने से अत्यंत वैराग्य उत्पन्न हुआ कि संसार में कुछ भी नहीं, लेकिन यह बात माता-पिता से तो नहीं कही। अपने इष्ट-मित्रों से और विद्वान् पण्डितों से पूछने लगा कि अमर होने का कोई उपाय मुझे बतलाओ। उन्होंने योगाभ्यास करने के लिए कहा, तब मेरे मन में आया कि अब गृह त्यागकर कहीं चला जाऊँ। मुझे निश्चय हो गया कि असार संसार में कोई पदार्थ नहीं जिसके अर्थ जीने की इच्छा की जाय वा किसी पर मन लगाया जाए।"

भगिनी और चाचा की मृत्यु ने महर्षि के हृदय में अमर पद प्राप्त करने की प्रबल लौ पैदा कर दी। परन्तु घर के काम-काजों में बँधे रहने पर यह सिद्ध न होता देखकर उन्होंने गृह-त्याग का विचार किया। मित्रों से भी विचार प्रकट किया और पिता से काशी जाकर पढ़ने का विचार किया। परन्तु माँ-बाप ममता में फँसे हुए पुत्र का वियोग न सह सकते थे। अतः उन्होंने उसे विवाह-बन्धन में फाँसने का सङ्कल्प किया। परन्तु २१ वर्ष के नवयुवक मूलजी माता-पिता के सङ्कल्प की परवाह न कर एक दिन शौच के बहाने गृह त्याग अपने स्वतन्त्र पथ के यात्री बन गये।

मार्ग में इस नवीन युवक वैरागी के शरीर पर जो कीमती अंगूठी आदि आभूषण और दुपट्टा आदि वस्त्र थे उनको वैरागी साधुओं ने ठग लिया और हमारा युवक वैरागी निःशंक भाव से 'सायले' ग्राम में पहुँचा। वहाँ एक ब्रह्मचारी ने उसको ब्रह्मचर्य व्रत में दीक्षित किया और 'शुद्ध चैतन्य' बनाकर



महर्षि दयानन्द सरस्वती

गेरुवा वस्त्र पहना हाथ में तूम्बा दिया। तदनन्तर मूलजी उन्हीं के मठ में रहकर योगाभ्यास करने लगे। वहाँ से कोटकांगड़ा के ठिकाने आ गये। इससे आगे के विषय में स्वामी जी अपनी जीवनी में लिखते हैं–

¤ ¤

## पिता जी से अंतिम भेंट

"कोट कांगड़ा से चलकर मैं सिद्धपुर में आकर नीलकण्ठ महादेव के स्थान में ठहरा। वहाँ दण्डी स्वामी और बहुत-से ब्रह्मचारी ठहरते थे। कोट कांगड़ा में जो मुझको वैरागी मिला था उसने मेरे पिता के पास पत्र भेजा कि तुम्हारा लड़का काषाय वस्त्र धारण किये ब्रह्मचारी हुआ यहाँ मुझको मिलकर कार्तिकी के मेले सिद्धपुर को गया है।"

"ऐसा सुनकर पिता जी चार सिपाहियों सहित सिद्धपुर में आकर मेले में मेरा पता लगाकर मन्दिर में जहाँ पण्डितों के बीच में मैं बैठा था, एकाएक वहाँ पहुँचकर मुझसे बोले कि 'तू हमारे कुल में कलङ्क लगाने वाला उत्पन्न हुआ।' देखते ही मेरा कलेजा धड़कने लगा। तब मैंने पिता जी की ओर देखकर इस भय से कि पिता जी मुझको मारेंगे उठकर चरण छूकर नमस्कार किया और कहा कि आप क्रोधित मत हूजिये, मैं किसी आदमी के बहकाने से चला आया और अत्यन्त दुःख पाया। अब मैं घर को आने वाला था, परन्तु आप आये यह बहुत अच्छा हुआ। अब मैं साथ घर को चलूँगा। तो भी मेरे को आ के मारा, मेरे गेरुवे वस्त्रों को फाड़ डाला और एक तूम्बा था उसको तोड़-फोड़कर फेंक दिया और दूसरे नवीन श्वेत वस्त्र धारण कराके जहाँ ठहरे थे वहाँ मुझको ले गये और मेरे साथ दो सिपाही कर दिये कि क्षण-भर भी इसको पृथक् मत छोड़ो।"

रात को मूलजी गाढ़ निद्रा का ढोंग करके लेट गये और रात्रि के तीसरे पहर जब पहरेदार अचेत हो गये तब लघुशंका के बहाने फिर घर को परित्याग



सिद्धपुर के मेले में शुद्धचेतन ब्रह्मचारी और पिताजी की अन्तिम भेंट।

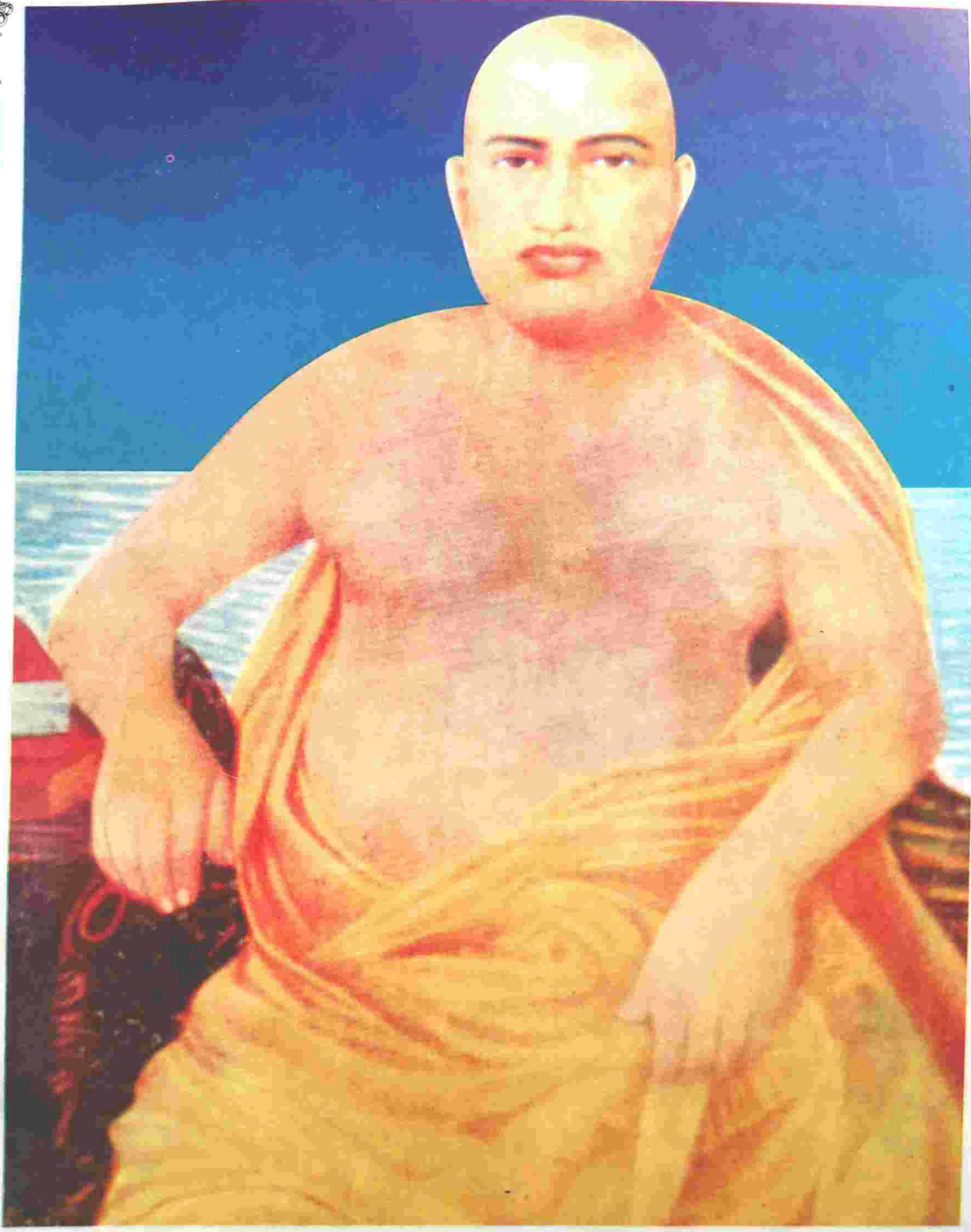
कर अपने अमर होने के मार्ग पर हो लिये।

इसके बाद शुद्ध चैतन्य ने अहमदाबाद से बड़ौदा आकर चेतन मठ में ब्रह्मानन्द आदि ब्रह्मचारियों से वेदान्त के ग्रन्थों का अध्ययन किया और चाणोदक कल्याणी पहुँचकर परमहंस नामक महाराष्ट्रीय दण्डी संन्यासी से संन्यास की दीक्षा लेकर अपना नाम "दयानन्द सरस्वती" रखा। तदनन्तर अनेक स्थानों पर घूमते अनेक संन्यासियों और ब्रह्मचारियों से नाना ग्रन्थ पढ़ते हुए सम्वत् १९१२ में हरद्वार के कुम्भ के मेले पर पहुँचे और वहीं चण्डी पर्वत के जंगलों में योगाभ्यास करते रहे। वहाँ से हिमालय पर्वत के ऋषिकेश, केदारघाट, उत्तरकाशी, तुङ्गनाथ, जमुनोत्तरी आदि तीर्थों और कानपुर, फर्रुखाबाद आदि नाना शहरों में भ्रमण करते जिस स्थान पर जो साधु-संन्यासी-विद्वान् मिलता उससे योग तथा शास्त्र सीखते और तान्त्रिक आदि झूठे संन्यासियों की पाखण्ड-लीला देखते हुए, अनेक प्रकार अपना अनुभव बढ़ाते हुए कार्तिक सुदी सम्वत् १९१७ में मथुरा पहुँचे। इतने समय के भीतर स्वामी जी ने कई जंगलों का भ्रमण किया और उसमें अनेक बार उनको भीषण हिंस्त्र जन्तुओं का भी सामना करना पड़ा।

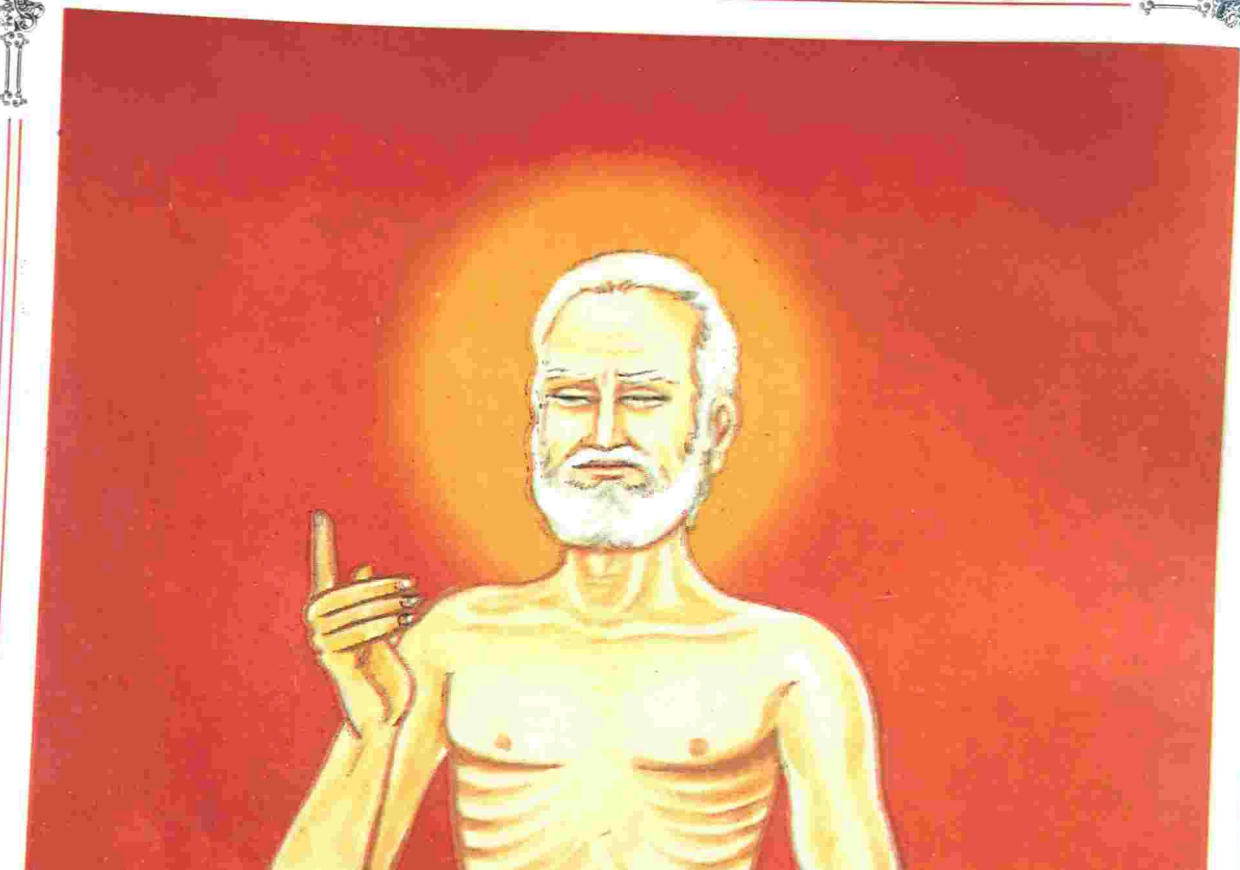
¤ ¤

## गुरु विरजानन्द से भेंट

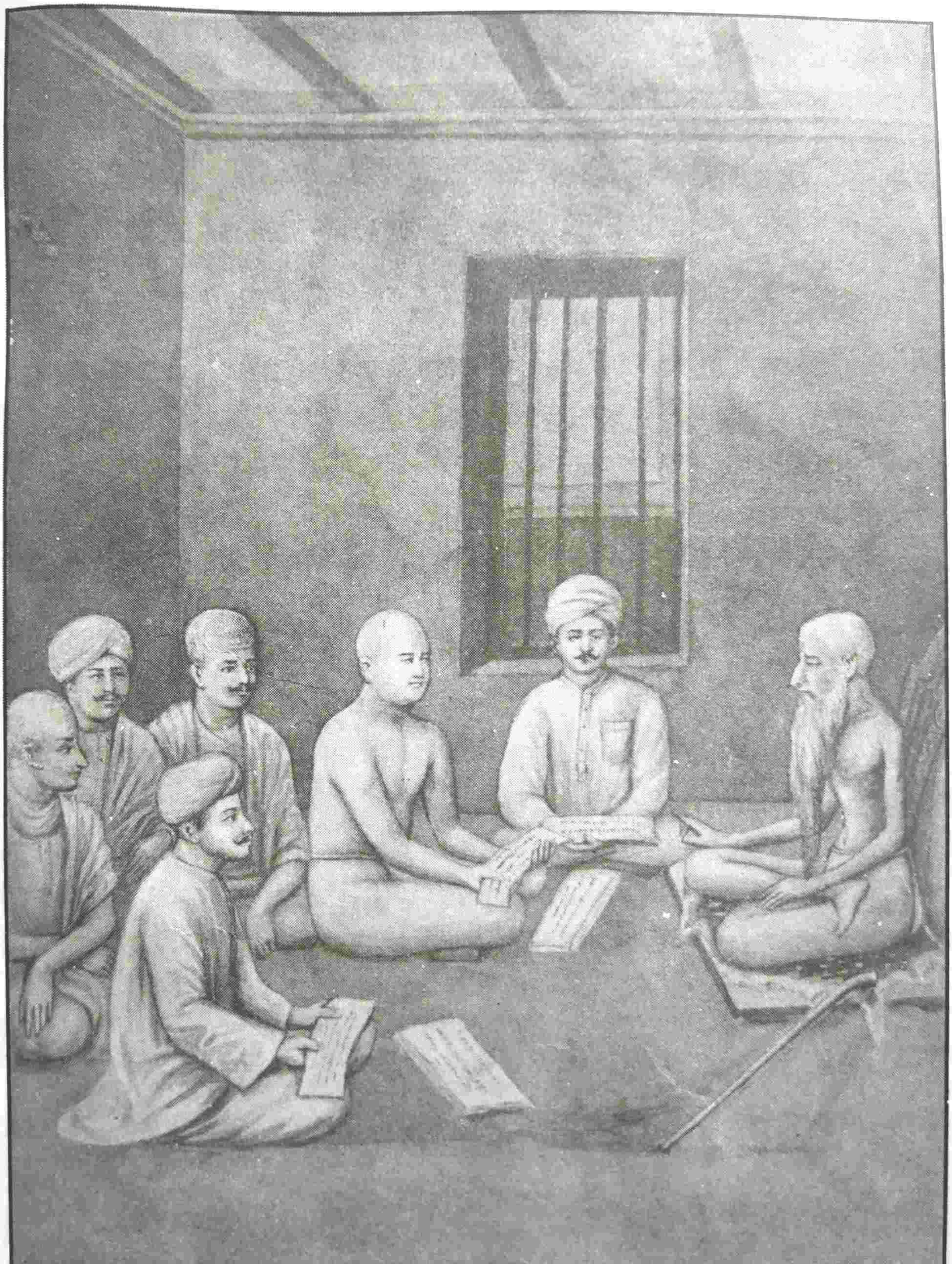
मथुरा में दण्डी स्वामी विरजानन्द जी की कीर्ति सुनकर दयानन्द सरस्वती ने उनका शिष्य बनने का निश्चय कर लिया। विरजानन्द जी का नियम था कि वह अपने शिष्यों से संस्कृत व्याकरण के सारस्वत, सिद्धान्त कौमुदी आदि अनार्ष ग्रन्थ छुड़ाकर अष्टाध्यायी, महाभाष्यादि केवल आर्ष ग्रन्थ पढ़ाया करते थे। इस नियम के अनुसार उन्होंने दयानन्द सरस्वती से भी ये ग्रंथ छुड़ाकर उनके लिए चन्दे से ३१ रुपए) का महाभाष्य मँगा दिया था। दूसरा नियम यह था कि



स्वामी दर्शनानन्द जी



गुरु विरजानन्द जी



गुरु विरजानन्द के समीप विद्याध्ययन।

केवल वही विद्यार्थी उनके शिष्य हो सकते थे जिनको अपने निर्वाह की चिन्ता न हो, क्योंकि निर्वाह की चिन्ता के साथ-साथ विद्याध्ययन ठीक तरह नहीं हो सकता। दयानन्द सरस्वती के भोजनादि का प्रबन्ध उनके सदाचार से प्रसन्न होकर मथुरा के ही दुर्गाप्रसाद क्षत्रिय और अमरलाल औदीच्य नाम के दो सज्जनों ने अपने ऊपर ले लिया।

स्वामी दयानन्द गुरु जी की सेवा में सदा दत्तचित्त रहते थे। स्वयं नित्य स्नान, सन्ध्या, योगाभ्यास, भ्रमण, व्यायामादि करके भी नियम से गुरु जी के स्नानार्थ यमुना-जल स्वयं भरकर नित्य रखते थे। उनके आदेश-पालन, सेवा-सुश्रूषा और चमत्कारिणी प्रतिभा के कारण दण्डी जी उनसे बहुत प्रसन्न थे।

दण्डी जी का स्वभाव बहुत क्रोधी था। इस कारण वह दयानन्द सरस्वती को कभी-कभी छोटी बात पर कठोर दण्ड दे बैठते थे, परन्तु दयानन्द ने इस दण्ड को कभी बुरा नहीं माना।

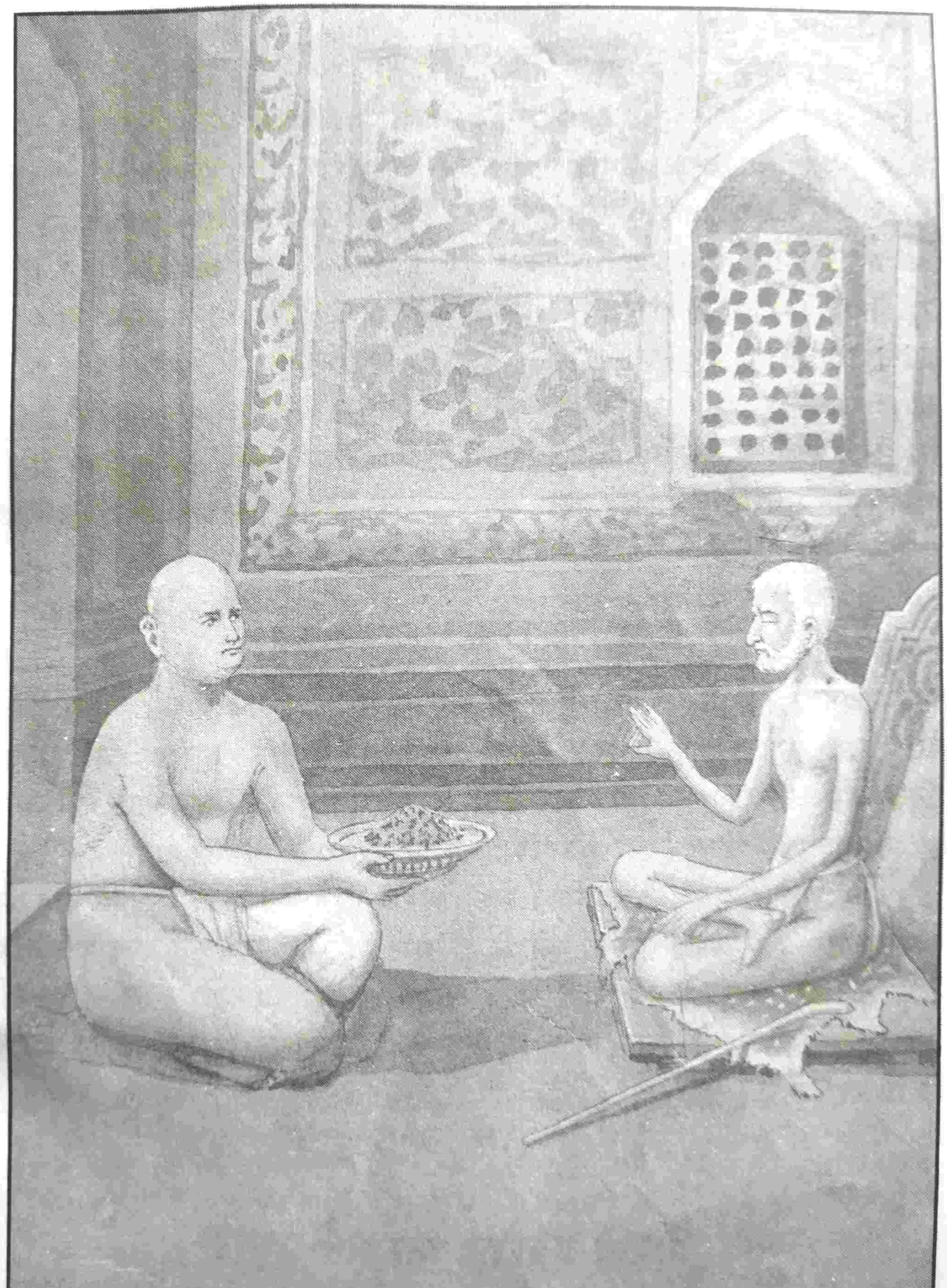
एक बार मकान का कूड़ा बुहारकर एक स्थान पर रख दिया था कि दण्डी जी का उस पर पैर पड़ गया। इस पर दण्डी जी ने क्रुद्ध होकर दयानन्द जी को अपने पास आने से रोक दिया, पर तो भी उन्होंने उनको न छोड़ा। अपराध क्षमा करा ही लिया।

श्री विरजानन्द जी दयानन्द को अपना परमप्रिय, प्रतिभावान्, शिष्यरत्न अनुभव करते थे। वे दयानन्द जी की तर्क-शक्ति के लिए कह दिया करते कि "दयानन्द! तुमसे कोई क्या वाद करे, तुम तो कालजिह्व हो। काल के समान तुम्हारा तर्क सर्व-विजयी है।"

¤ ¤

## गुरु-दक्षिणा

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ढाई वर्ष तक दण्डी स्वामी श्री विरजानन्द के चरण-कमलों में बैठकर अष्टाध्यायी, महाभाष्य, वेदान्तसूत्र तथा अनेक शास्त्रों



गुरु दक्षिणा का अपूर्व दृश्य।

का अध्ययन किया। विद्या के महासागर से पार उतरने के उपरान्त उनकी इच्छा गुरु महाराज से आदेश लेकर देशाटन करने की हुई। स्वामी दयानन्द जी ने प्राचीन आर्य-मर्यादा के अनुसार गुरु जी के समीप रीते हाथ जाना उचित न समझा। इस कारण अन्तिम आशीर्वाद लेने के लिए दण्डी जी महाराज का अति प्रिय पदार्थ लौंग ही आधा सेर ले थाली में रखकर गुरु जी के चरणों में धर दिया और नमस्कार कर कहा, "भगवन्! आपने मुझ पर असीम कृपा कर विद्यादान दिया! इसके लिए मेरा अन्तःकरण कोटिशः आपके प्रति भक्ति प्रकाश करता है, मैं स्वयं आपके चरणों में अपना सर्वस्व अर्पण करता हूँ। मेरे पास है ही क्या? भगवन्! यह आपकी प्रियतम वस्तु लवंग ही आपकी सेवा में समर्पित हैं, स्वीकार कीजिये और अपने शिष्य, सेवक दयानन्द को प्रसन्नता से आशीर्वाद और अन्तिम आदेश दीजिये।"

इस विनय से प्रसन्न होकर श्री दण्डी स्वामी विरजानन्द जी ने गद्गद स्वर में कहा—

"बेटा! जाओ, लिखा-पढ़ा सफल करो, देश का सुधार और उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मत-मतान्तरों की अविद्या को हटाओ। वैदिक धर्म का सर्वथा लोप हो गया है उसको पुनः सर्वत्र फैलाओ। यही आदेश है। मैं आशीर्वाद देता हूँ, वह सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तुमको बल देंगे।"

विदा होते समय गुरु जी ने फिर कहा—"देखो दयानन्द! मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमेश्वर और ऋषि-मुनियों की निन्दा भरी पड़ी है, ऋषिकृत ग्रन्थ इस दोष से रहित हैं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना।" यह आदेश लेकर श्रीचरणों में माथा टेककर स्वामी दयानन्द अपने गुरु का आशीर्वाद ले लोकोन्नति के मार्ग पर विचरने लगे।

¤ ¤

## महर्षि दयानन्द का धर्म-प्रचार

इस प्रकार गुरु जी के आशीर्वाद और आदेश धारण कर स्वामी दयानन्द

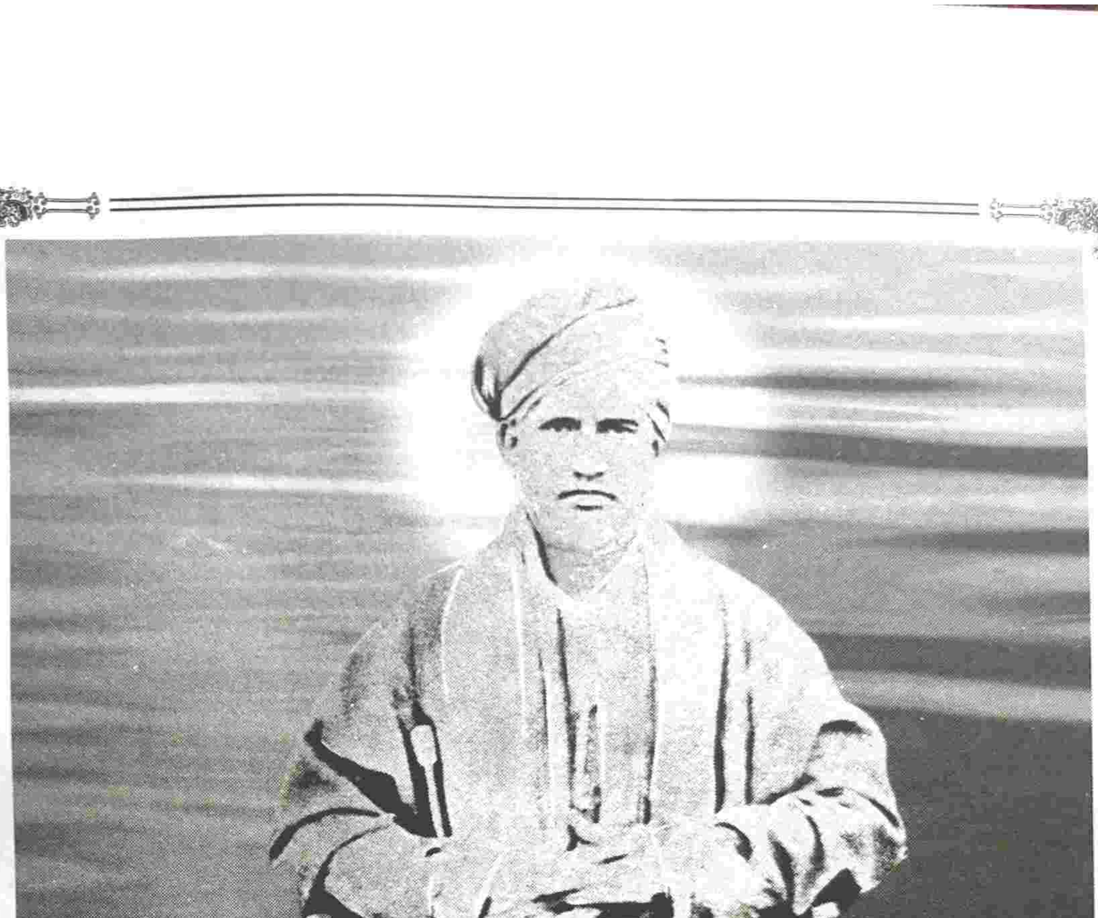


महर्षि दयानन्द का यह चित्र उस असली चित्र की प्रतिलिपि है, जो कि सन् १८८० में फर्रुखाबाद में वेद-भाष्य की कथा करने के समय लिया गया था।

कार्यक्षेत्र में उतर आये। सबसे प्रथम १९२० के वैशाख के अंत में आगरा में यमुना के किनारे भैरव मन्दिर के निकट ला० गल्लामल रूपचन्द के यहाँ आसन किया। वहाँ गीता की प्रभावजनक कथा कही। लोगों के कहने पर स्वामी जी ने पंचदशी की भी कथा की। वहाँ पंचदशी में यह लिखा देखकर कि ब्रह्म को भी भ्रम हो जाता है, उससे बड़ी अश्रद्धा हुई और उसे त्याग दिया। वहाँ स्वामी जी ने सन्ध्या पुस्तक का सम्पादन किया। म० रूपलाल जी ने उसकी ३०००० प्रतियाँ छपवाकर प्रचारित कीं। उसी समय से स्वामी जी ने प्रतिमा-पूजन का खण्डन प्रारम्भ कर दिया था। भागवत के खण्डन में भी एक पुस्तक "भागवत खण्डन" नामक लिखी।

यहाँ से स्वामी जी वैदिक साहित्य के ग्रन्थों की खोज में आबू, धौलपुर आदि होते हुए माघ बदी १२ सम्वत् १९२१ को अपने चार शिष्यों सहित ग्वालियर पहुँचे। वहाँ के नरेश ने स्वामी जी से पूछा कि भागवत-सप्ताह का माहात्म्य क्या है? स्वामी जी ने बिना किसी संकोच या लिहाज़ के उत्तर दिया कि क्लेश और कष्ट के सिवा कुछ भी नहीं। महाराज को यह बात बुरी लगी और उन्होंने एक सप्ताह तक भागवत की कथा कराने के लिए विराट् आयोजन किया। परन्तु दैववश उसी सप्ताह महारानी का पाँच मास का गर्भ गिर गया और रियासत में हैज़ा फैलने के कारण अनेक लोगों की मृत्युएँ हुईं। इस घटना से बहुत लोग स्वामी जी के अनुयायी बन गये। ग्वालियर से स्वामी जी करौली, जयपुर, अचरौली, कृष्णगढ़ और अजमेर आदि घूमते हुए चैत्र बदी ११ सम्वत् १९२२ को पुष्कर के प्रसिद्ध मेले में सम्मिलित हुए और वहाँ धर्म-प्रचार का कार्य बड़ी धूमधाम से किया। इस समय तक स्वामी जी जहाँ-जहाँ गये प्रायः उन सभी स्थानों पर पौराणिक, जैन, वैष्णव, चक्रांकित और कण्ठीधारी आदि नाना प्रकार के सम्प्रदायों के विद्वानों से अनेक शास्त्रार्थ हुए और उन सब में स्वामी जी विजयी होते रहे। इससे उनको प्रचार में बहुत सहायता मिली और हज़ारों लोग उनके अनुयायी बन गये।

पुष्कर के मेले के बाद स्वामी दयानन्द जी वापस अजमेर चले गये और वहाँ उनका राबिन्सन, शूलबेड आदि कई बड़े-बड़े ईसाई पादरियों से



महर्षि दयानन्द सरस्वती

यह चित्र अप्रैल सन् १८७४ ई० में Redv. कन्हैयालाल जी फोटोग्राफर ने देहरादून में तैयार किया था और उनको यह श्री महाशय मोहनलाल जी आर्टिस्ट से प्राप्त हुआ था।

वाद-विवाद, विचार और वार्तालाप हुआ। इससे यूरोपियन लोगों में भी स्वामी जी के दर्शन करने और उनके विचार जानने की इच्छा बढ़ गई।

¤ ¤

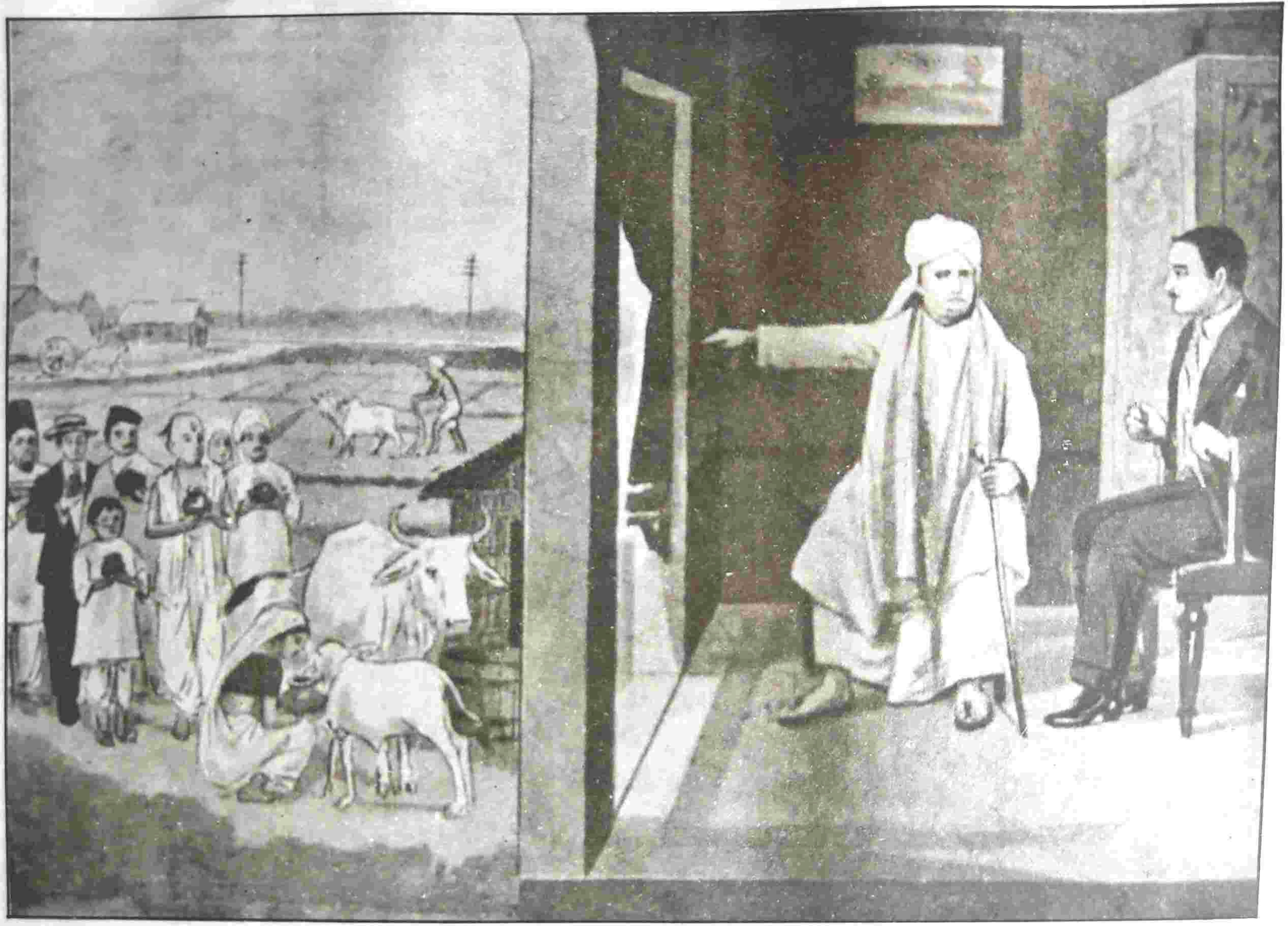
## गोरक्षा विषय पर स्वामी जी का कर्नल ब्रुक्स से वार्तालाप

कर्नल ब्रुक्स महाशय उस समय राजस्थान के पोलिटिकल एजेण्ट थे। वे गेरुए कपड़ों से बहुत चिढ़ा करते थे। वे भी एक बार श्री महर्षि स्वामी दयानन्द से लाला वंशीलाल जी के बाग में मिलने आये। जब लोगों ने कर्नल साहब को दूर से ही आते देखा, तो घबरा गये, परन्तु स्वामी जी ने उन्हें कहा, "डरो नहीं, शांत रहो।" कर्नल महाशय टोप उतारकर स्वामी जी की ओर बढ़े और हाथ मिलाकर कुर्सी पर बैठ गये। स्वामी जी ने गो-रक्षा का विषय छेड़ा और निधड़क होकर कर्नल ब्रुक्स से कहा कि 'आप हमारे देश में नुकसान का काम करते हैं। एक गौ से इतने अधिक आदमियों को लाभ पहुँचता है, परन्तु आप उसे अकेले मारकर खा जाते हो।' कर्नल साहब ने स्वामी जी की बात मान ली और दूसरे दिन उन्हें अपने बंगले पर मिलने को बुलाया।

दूसरे दिन कर्नल साहब की गाड़ी स्वामी जी को लेने आई। स्वामी जी बंगले पर भी पहुँचे। वहाँ पौन घण्टे तक कर्नल साहब ने गो-रक्षा विषय पर बातचीत की और अन्त में कर्नल साहब ने गो-घात की हान्यिाँ स्वीकार कीं। इस पर स्वामी जी बोले—फिर आप गो-हत्या को बन्द क्यों नहीं करते?

कर्नल—यह मेरा अधिकार नहीं। मैं आपको चिट्ठी देता हूँ, आप लाट साहब से मिलें। स्वामी जी चिट्ठी लेकर चले आये।

अजमेर में ही स्वामी जी ने रामसनेहियों के बड़े महन्त को शास्त्रार्थ पर ललकारा। पहले तो उसने टालमटोल किया और बाद में यह कहकर कि 'हम तो राम-राम रटते हैं, भोजनादि पाकर सुख से समय बिताते हैं, शास्त्रार्थ आदि



राजस्थान के पोलिटिकल ऐजेन्ट कर्नल ब्रुक्स से गोरक्षा पर वार्तालाप।

हमें कुछ नहीं आता' कहकर हार मानी और डेरा-डण्डा उठाकर भाग गया।

एक बार बहुत-सी स्त्रियाँ उपदेश लेने के निमित्त स्वामी जी के पास आ गईं। उनको बड़े आदर से स्वामी जी ने कहा कि—"हम स्त्रियों को उपदेश नहीं देते, अपने पतियों को भेज दो, उनको उपदेश दे देंगे।"

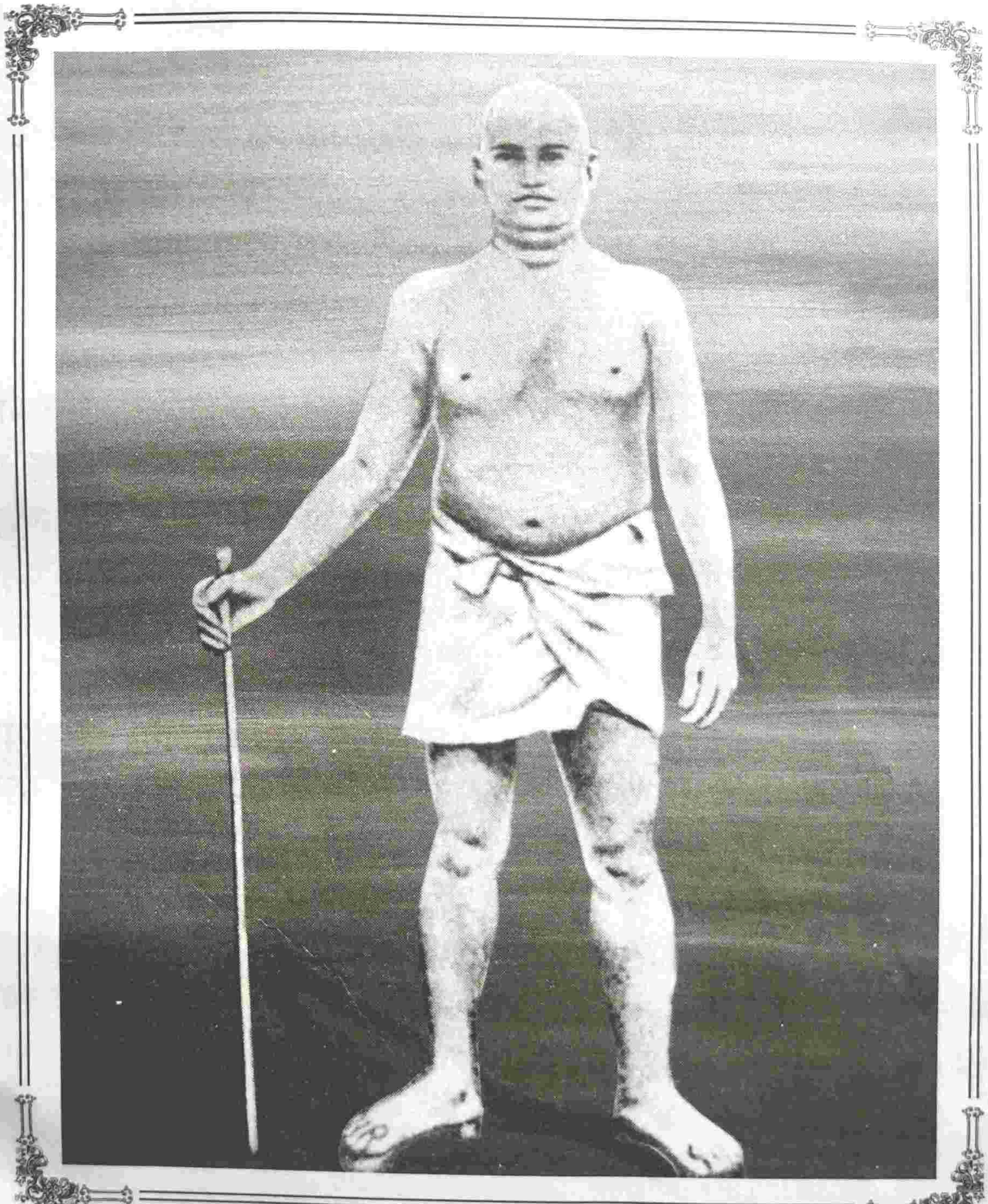
अजमेर से स्वामी जी कृष्णगढ़ गये। वहाँ वल्लभ-मत का खूब मान-मर्दन किया। वहाँ से चलकर दूदू, वगरू और अजमेर ठहरते हुए आगरा पहुँचे (कार्तिक बदी ९, सं० १९२२) । वहाँ भागवत के खंडन की एक पुस्तिका छपाकर वितरण की और वहाँ से मथुरा जाकर गुरुदेव के दर्शन कर मेरठ होते हुए सम्वत् १९२३ में हरिद्वार में कुम्भ-अवसर पर आ गये और वहाँ धूमधाम से मूर्तिपूजा का खण्डन प्रारम्भ हुआ।

¤ ¤

## सर्वत्यागी दयानन्दर्षि

सं० १९२४ के आरम्भ में स्वामी जी ने भीमगोडे के उत्तर में सप्तस्रोत के बंध पर एक पर्णकुटी बना पाखण्ड-खण्डिनी पताका लगाकर पाखण्डी सम्प्रदायों का धुआँधार खंडन प्रारम्भ किया। नित्य स्वामी जी धर्मोपदेश और शंका-समाधान करने लगे। जन-समुदाय में स्वामी जी के प्रचार की धूम मच गई। प्रवाह का प्रवाह लोगों का पाखंड-खंडिनी पताका की तरफ ज्ञान और धर्म की पिपासा के कारण उमड़ने लगा। फल यह हुआ कि लाखों लोगों ने पाखंडमत से मुँह मोड़ लिया। नागा, बैरागी, उदासी, वैष्णव आदि सभी इस प्रचार से दंग थे।

इस मेले पर स्वामी जी ने पाखण्ड का जैसा घोर प्रपंच देखा, उसको सहसा उखाड़ डालने के लिए अपने को समर्थ न पाया। अतः उसको निर्मूल करने के लिए वीर संन्यासी की आत्मा में और अधिक तप करने की प्रबल



सर्वत्यागी महर्षि दयानन्द

स० १८२४ के कुम्भ की समाप्ति पर महर्षि का वस्त्राभूषण आदि सर्वस्व त्याग। यह चित्र कुम्भ मेले की समाप्ति पर किसी अमेरिकन यात्री ने खींचा था, ऐसा कहा जाता है।

आकांक्षा हुई। सर्वस्व त्याग कर डालने की प्रबल प्रेरणा हृदय में होने लगी। बस, मेले के सहस्त्रों भक्त नर-नारियों ने जो कुछ भेंट-पूजा, धन आदि स्वामी जी को समर्पण किया उसको वहाँ ही भूखों, नंगों और कंगालों में बाँट दिया। व्याकरण का महाभाष्य पुस्तक, एक स्वर्ण-मुद्रा और एक मलमल के थान सहित मथुरा में श्री परमपूज्य गुरुदेव के पास भिजवा दिया और शेष सर्वस्व त्यागकर एक लंगोटा लगाकर हाथ में दंड रखकर 'सर्वत्यागी दयानन्द' के रूप में विचरण करने लगे।

स्वामी कैलासपर्वत जी ने इस प्रकार सर्वस्व त्यागते हुए स्वामी दयानन्द जी से ऐसा करने का कारण पूछा तो उत्तर में स्वामी जी ने कहा कि 'जब तक आवश्यकताएँ अल्प न की जायँ तब तक पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त नहीं होती और प्रयोजन भी सिद्ध नहीं होता। परम उद्देश्य साधन के लिए निर्द्वन्द्व होना आवश्यक है।'

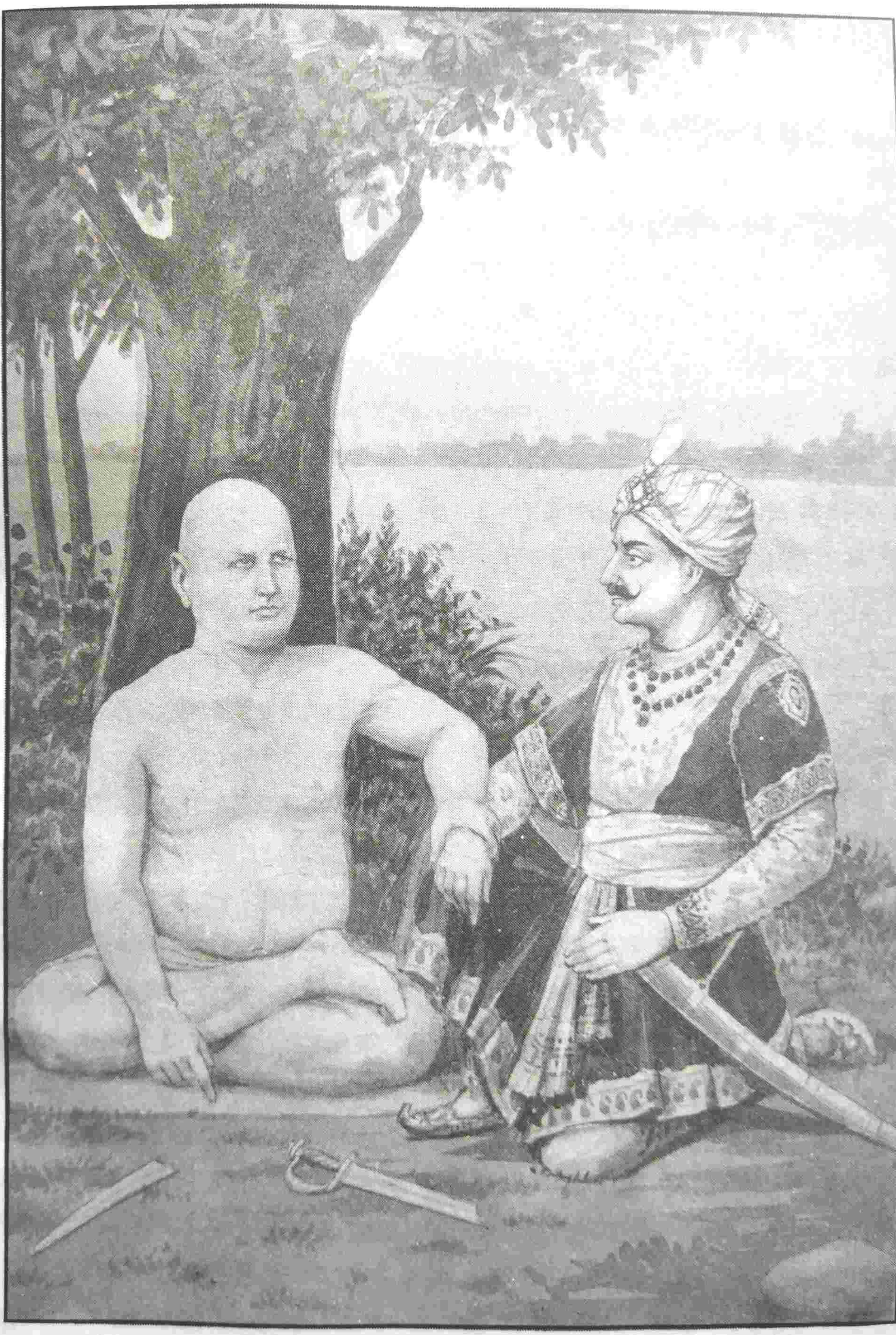
इस समय तक महर्षि ने मूर्तिपूजा, वाममार्ग, वैष्णव मत, चोली मार्ग, बीजमार्ग, अवतारवाद, कण्ठी, तिलक, छाप, माला, पुराण, उपपुराण, शंख, चक्र, गदा तपाकर देह पर छाप लगाना, गंगास्नान से मुक्ति मानना, काशीवास से मुक्ति, नाम-स्मरण से भवसागर का तरना आदि पाखण्डों को खूब समझ लिया था।

सर्वत्यागी दयानन्द अब से मौन धारण करके गंगा-तट पर विचरण करने लगे। ऋषिकेश, हरद्वार, कनखल, लण्डौरा, शुकताल, परीक्षितगढ़, गढ़मुक्तेश्वर, रुड़की, मीरापुर आदि नाना स्थानों में मौनी होकर एकान्तवास करते रहे। बोलते भी, तो केवल संस्कृत में।

¤ ¤

## राव कर्णसिंह का स्वामी जी पर तलवार का वार

ढाई वर्ष की घोर तपस्या के अनन्तर स्वामी जी फिर धर्मप्रचार और पाखण्ड-खण्डन के क्षेत्र में प्रविष्ट हुए। सम्वत् १९२५ में आप कर्णवास पहुँचे।



राव कर्णसिंह का स्वामी जी पर तलवार का वार।

यहाँ प्रतिवर्ष ज्येष्ठ शुक्ला दशमी को गंगास्नान का मेला लगता है। स्वामी जी की चर्चा सुन राव कर्णसिंह बरगूजर रईस करौली भी वहाँ पधारे और अपनी तलवार का लोहा परखना चाहा।

राव कर्णसिंह रंगाचार्य के चेले थे। मेले के अवसर पर रासलीला होती थी। सभी पंडितों, संन्यासियों को इस अवसर पर बुलाया गया। स्वामी जी को भी बुलाया गया। स्वामी जी ने इन्कार करते हुए स्पष्ट कह दिया कि 'ऐसे निन्दनीय कार्य में हम कदापि सम्मिलित नहीं हो सकते।'

अगले दिन राव महाशय चिढ़कर अपने नौकरों को साथ लेकर स्वामी जी की कुटिया पर पधारे। सायंकाल का समय था। स्वामी जी आये हुए सज्जनों को उपदेश कर रहे थे। राव महाशय भी आ पहुँचे और आते ही ऐंठकर बातें शुरू कर दीं। गंगाजल के मुक्तिदायी होने की बात चलने पर स्वामी जी ने स्पष्ट कहा कि 'यह तो केवल पीने का पानी है; मुक्ति कर्मों से होती है, पानी से नहीं!' राव के माथे पर तिलक देखकर स्वामी जी ने पूछा कि 'तुमने क्षत्रिय होकर ये भिखारियों के चिह्न क्यों धारण किये हैं?' इस पर राव साहब बहुत जल गये और गाली-गलौज करने लगे।

स्वामी जी ने निर्भय होकर शांति से सत्य का उपदेश दिया और चक्रांकित मत की पोल खोलकर धर दी और कहा—'तुम कैसे क्षत्रिय हो जो रासलीला में लौंडों को स्वाँग भरवाकर महापुरुषों की नकलें उतरवाते हो और उनको नचवाते हो? अगर तुम्हारी बहिन-बेटियों को कोई नचावे तो कैसा बुरा लगे?'

सिंह जैसी निर्भय बातें सुनकर राव साहब ओठ चबाने, तिवरी चढ़ाने और तलवार पर हाथ कसने लगे। एक नौकर ने स्वामी जी पर हाथ डालना चाहा कि स्वामी जी ने धक्का देकर उसको तो परे कर दिया और बोले—'अरे धूर्त! यदि लोहा परखना है तो जयपुर और जोधपुर के राजाओं से जा लड़ो। यदि शास्त्रार्थ करना है तो वृन्दावन से रंगाचार्य को बुला लाओ।' बहुत कोलाहल हो गया। राव साहब सुनकर स्वयं तलवार खींचकर आगे बढ़े थे कि स्वामी जी ने हाथ से तलवार छीन ली और मूठ पकड़कर नोंक ज़मीन पर टेककर, दबाकर तलवार तोड़ डाली। इधर ठाकुर कृष्णसिंह लट्ठ दिखाकर धमकाने लगे कि 'तुम महात्मा

को ज़रा भी छेड़ोगे तो मारे लट्ठों के तमाम शेखी निकाल देंगे।' यह सुनते ही राव कर्णसिंह ने दुम दबाकर साथियों को समेट, उलटे पैर डेरे पर आकर दम लिया।

कार्तिक के बाद स्वामी जी ने चाशनी में चक्रांकितों का खण्डन किया। वहाँ से अलीगढ़ गये। यहाँ गुजराती ब्राह्मण हीरावल्लभ जी से मुठभेड़ हुई। हीरावल्लभ जी ने अपनी शालिग्राम की बटिया गंगा में बहा दी। स्वामी जी वहाँ से अनूपशहर में आये।

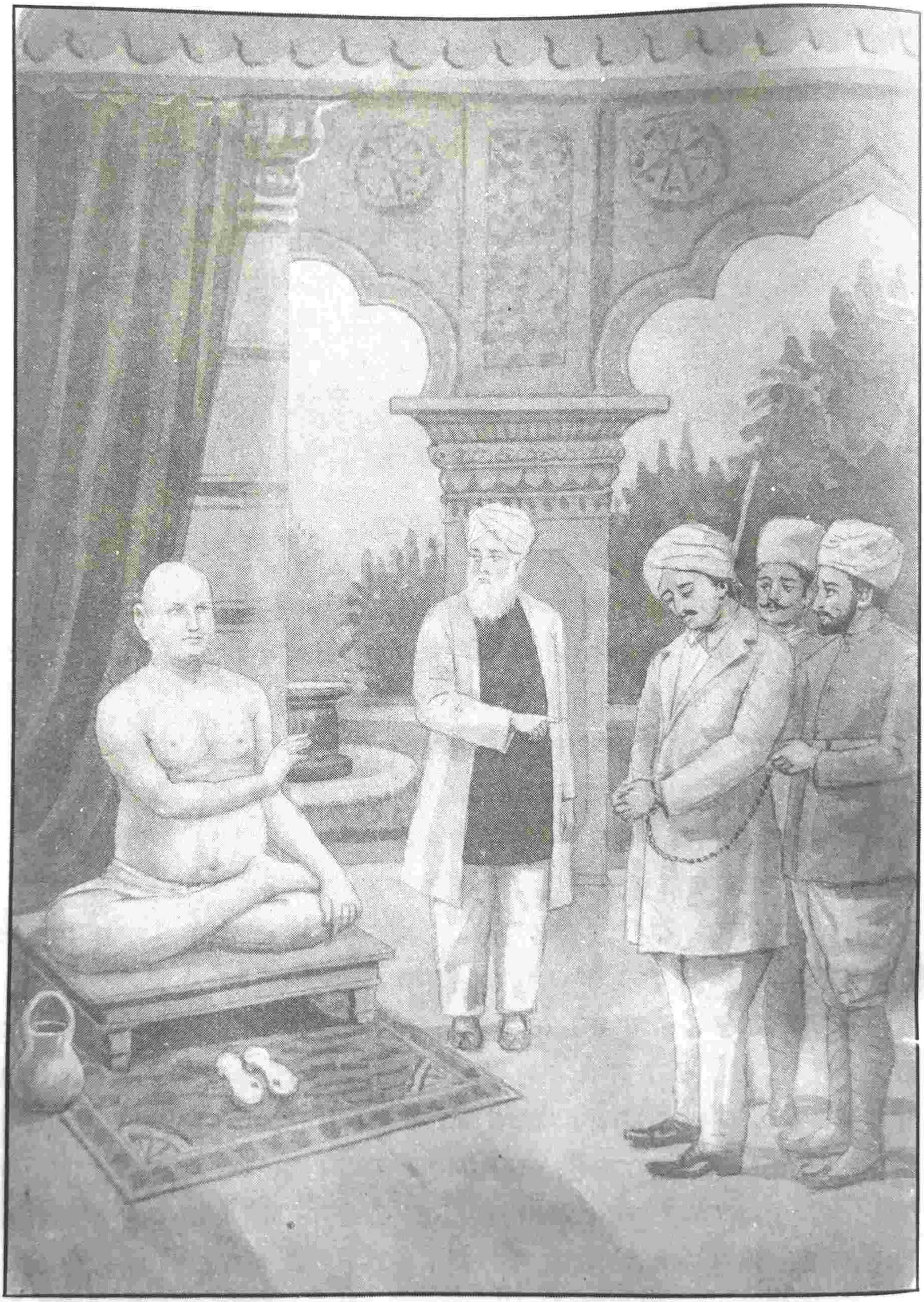
¤ ¤

# पान में विष का प्रयोग

उस दिनों अनूपशहर में सय्यद मुहम्मद तहसीलदार थे। वे अरबी-फारसी के अच्छे विद्वान् थे; नित्यप्रति स्वामी जी के पास आया करते थे। उन पर स्वामी जी की विद्या और तप का प्रभाव था। वे उन पर मोहित थे।

स्वामी जी के खण्डन-मण्डन से स्वार्थी लोग स्वामी जी के शत्रु हो गये थे। एक दिन एक ब्राह्मण ने स्वामी जी के पास आकर बड़े विनयपूर्वक एक पान का बीड़ा समर्पण किया। सरल स्वभाव से स्वामी जी ने उसे मुख में धर लिया। उसमें विष था; मुख में रखते ही उसका असर होने लगा। स्वामी जी ने उस समय उस नीच पुरुष को कुछ न कहा, परन्तु बाद में स्वयं एकान्त गंगा-तट पर जाकर न्यौली कर्म द्वारा उपचार कर लिया।

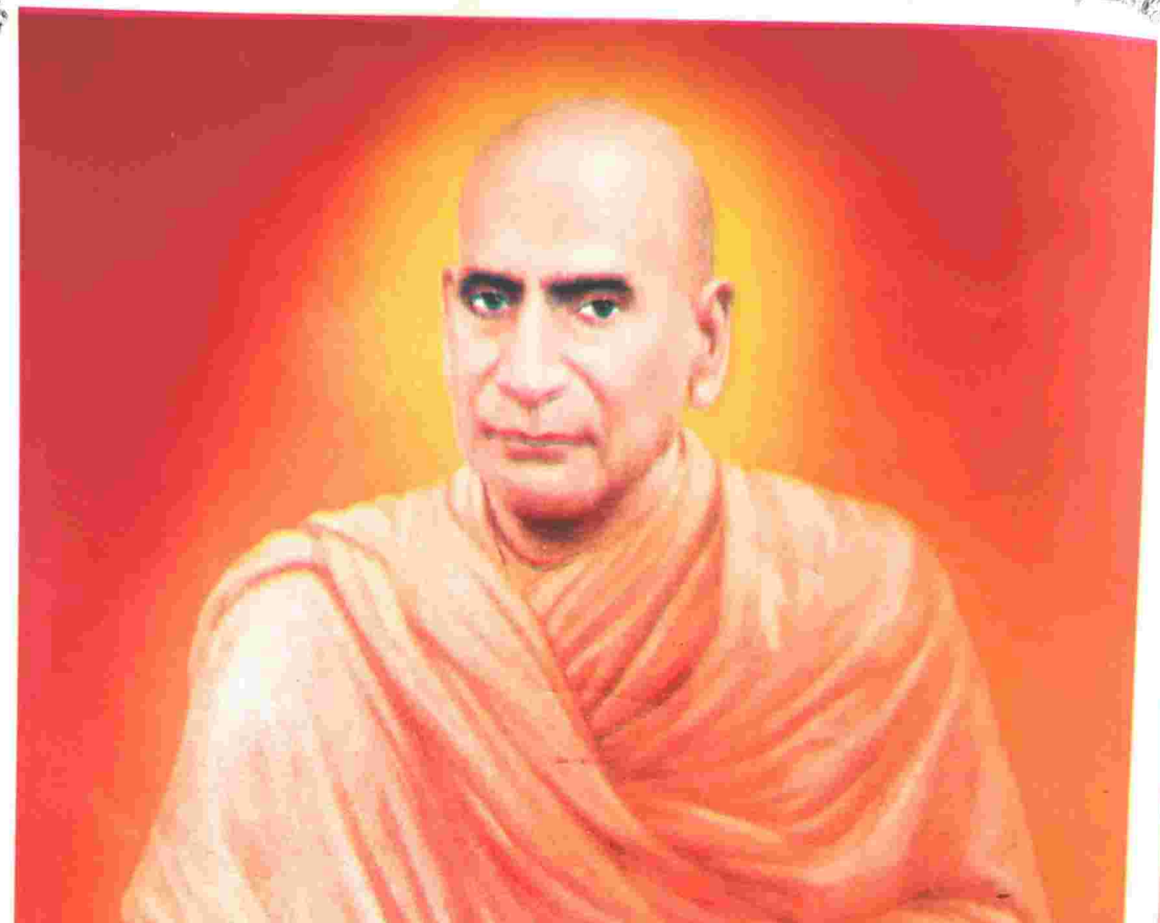
स्वामी जी को विष देने का समाचार फैलते-फैलते तहसीलदार के कान तक पहुँचा। उन्होंने उसी समय उस ब्राह्मण को पकड़वा मँगाया और बँधवाकर स्वामी जी के सामने ले आये। स्वामी जी ने उस अपराधी को देखते ही दया से उस पर से दृष्टि हटा ली और तहसीलदार साहब के कार्य को अनुचित-सा देखकर मौन होकर बैठ गये। पूछने पर कहा—"आपने मेरे लिए एक आदमी को कैद में बाँधा है। परन्तु मैं संसार को कैद कराने नहीं आया; मैं कैद से छुड़ाने आया हूँ। यदि वह अपनी दुष्टता को नहीं छोड़ता है तो हम अपनी श्रेष्ठता को



पान में विष देने को यह कहकर छुड़ाना कि "मैं संसार में कैद करवाने नहीं आया किन्तु कैद से छुड़ाने आया हूँ।"



धर्मवीर पं. लेखराम जी



स्वामी श्रद्धानन्द जी

क्यों छोड़ें?" यह कहकर स्वामी जी ने उस ब्राह्मण को बन्धन से छुड़ा दिया।

बेलौन में स्वामी जी ने मृतक श्राद्ध का खूब खंडन किया। कहा—"अरे मूर्खो, जल में जल मत डालो, और यदि डालना है तो वृक्ष की जड़ में डालो कि उसको लाभ हो।" वहाँ बनखंडी महादेव के मन्दिर में कृष्णानन्द सरस्वती से अवतार पर शास्त्रार्थ हुआ। अतरोबल और छलेसर में प्रचार किया। छलेसर में ठाकुर मुकुन्दसिंह जी रईस ने अपनी जमींदारी के २० मन्दिरों की मूर्तियाँ उठवाकर कालिन्दी में बहा दीं।

वहाँ से बगड़िया होते हुए सोरों आये। सोरों से अम्बागढ़ आए। वहाँ मूर्ति-पूजा पर बड़ा धुआँधार शास्त्रार्थ हुआ। प्रसिद्ध नैयायिक पण्डित अंगदराम शास्त्री से शास्त्रार्थ हुआ और उन्हें परास्त कर अपने पक्ष में कर लिया। सोरों के आस-पास के पाखण्डियों की बोलती बन्द हो गई। अंगद शास्त्री तो स्वामी जी के भक्त हो गये। इन्हीं दिनों पीलीभीत के अंगतराम भी आये। वे भी अंगद शास्त्री के साथ ही ठण्डे हो गये। इसी प्रकार छोटे-मोटे और भी हेकड़ीबाज आ-आकर अपना मद उतरवा लेते थे। सोरों से चलकर स्वामी जी शाहबाज़पुर आये। वहाँ कुछ दिन टिके।

¤ ¤

## व्याकरण का सूर्य अस्त

शाहबाज़पुर में स्वामी जी को समाचार मिला कि उनके परमपूज्य श्रद्धा-भाजन गुरुदेव दण्डी स्वामी श्री १०८ श्री विरजानन्द जी महाराज का मथुरा में कार्तिक बदी १३, सं० १९२५ को स्वर्गवास हो गया। यह सुनते ही स्वामी जी के मुख से निकल पड़ा कि "आज संस्कृत व्याकरण का सूर्य अस्त हो गया!"

वहाँ से स्वामी जी ककौड़े ग्राम (बदायूँ) पहुँचे। वहाँ कार्तिकी मेला भरता है। यहाँ बदायूँ के कलेक्टर से भेंट हुई। वहाँ खूब वैदिक धर्म का प्रचार किया। ककौड़े से नरौली, कम्पित होते हुए कायमगंज पहुँचे, वैदिक धर्म का

बराबर प्रचार-उपदेश और शङ्का-समाधान करते हुए फर्रुखाबाद पहुँचे। यहाँ प्रचार का बड़ा असर पड़ा। विश्वम्भरनाथ जी से लेकर धुरन्धर पण्डित तक स्वामी जी के अनुयायी हुए। एक सेठ जी नवीन मन्दिर बनाना चाहते थे, उन्होंने स्वामी जी के उपदेशों से प्रभावित होकर संस्कृत पाठशाला बनवा दी। वहाँ कई शास्त्रार्थ भी हुए।

¤ ¤

## ऋषि दयानन्द और विषधर सर्प

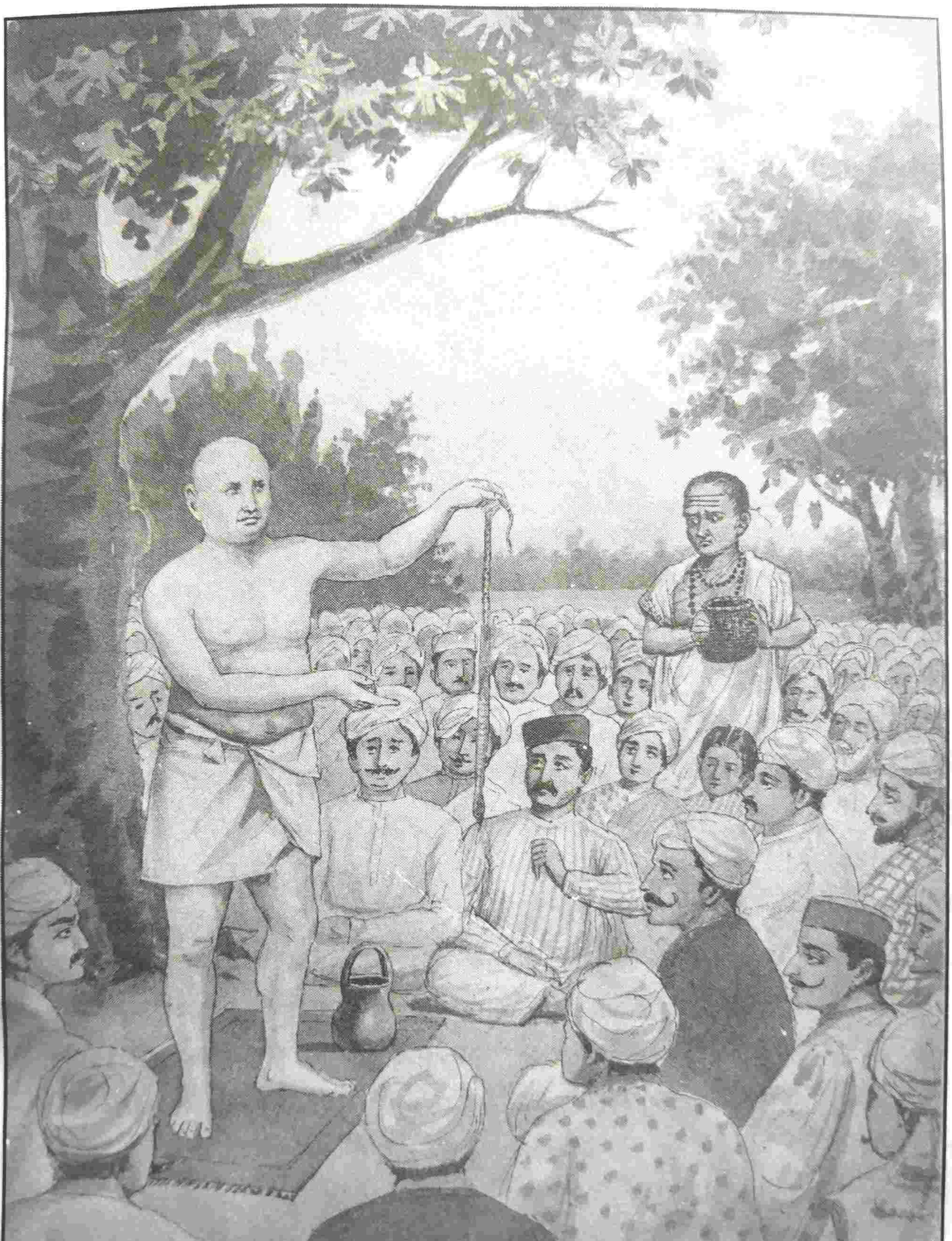
एक बार एक शिव-पूजक ब्राह्मण ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने की ठानी। एक डिब्बे में एक विषधर सर्प, जो वह नित्य अपनी पूजा के लिए सदा साथ रखता था, साथ ही लाया। शास्त्रार्थ में अपनी निर्बलता जानकर उसने अपने पूजा के देव सर्प को ही स्वामी जी पर पटक मारा। बोला—"यह महादेव आप ही न्याय कर देंगे कि तुम सचाई पर हो या मैं।" वह चाहता था कि प्रति-पक्षी को विषैले सर्प से ही समाप्त कर दूँ। परन्तु स्वामी जी ने सावधानी से अपने पैरों में लिपटे हुए साँप को एक ही झटके में झटककर परे फेंक दिया और उसका सिर एड़ी से कुचल दिया और कहा—"तेरे देवता ने तो बहुत देर लगाई और मैंने फैसला शीघ्र ही कर दिया।" दर्शकों को संकेत करके कहा—"जाओ और लोगों को बताओ कि झूठे देवताओं का इसी प्रकार नाश होता है।"

(नोट—इस घटना का वर्णन स्वर्गीय मैडम ब्लैवट्स्की कृत 'केव्स एण्ड जंगल्स फ्रॉम हिन्दुस्तान' नामक पुस्तक के आधार पर लिखा गया है।)

¤ ¤

## काशी-शास्त्रार्थ

फर्रुखाबाद से रवाना होकर स्वामी जी कानपुर, जलालाबाद और कन्नौज आदि होते हुए काशी महानगरी में आ गये। भरतपुर, रीवाँ, नरवा आदि के



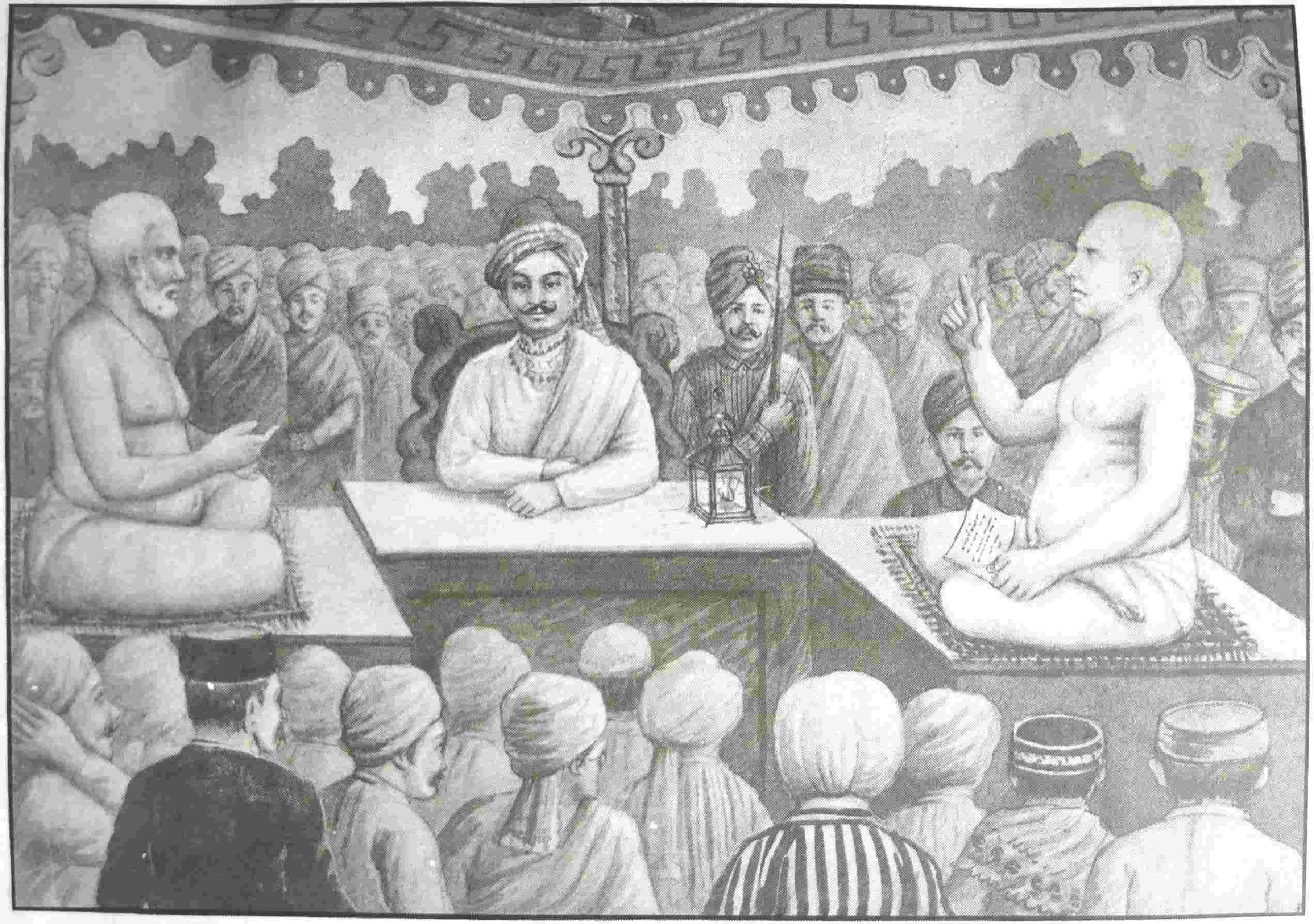
ऋषि दयानन्द और विषधर सर्प।

नरेश भी वहाँ विद्यमान थे। महानगरी में स्वामी जी के प्रचार की खूब धूम मची। वहाँ दिग्गज पण्डित स्वामी जी से टक्कर लेने का दम भरने लगे।

आनन्द बाग में मेला लगा रहता था। प्रचार की धूम थी। लोगों की उत्सुकता थी कि स्वामी जी यहाँ के प्रसिद्ध पण्डितों से शास्त्रार्थ करें।

महाराज रामनगर (बनारस) भी चाहते थे कि काशी के पण्डितों का स्वामी जी से सामना हो। स्वामी जी ने जब ये बातें सुनीं तो उन्होंने महाराज से कहला भेजा कि मूर्ति-पूजा आदि विषयों पर शास्त्रार्थ कराकर सत्यासत्य का निर्णय कर लें। इस पर महाराजा ने पण्डितों को दान-दक्षिणा आदि का सब बोझ अपने सिर लेकर कार्तिक सुदी १२ मंगलवार सम्वत् १९२६ का दिन शास्त्रार्थ के लिए नियत कर दिया। काशी के प्रायः सभी बड़े-बड़े पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिए तैयार किया गया। शहर कोतवाल रघुनाथ सहाय को स्वामी जी के समीप शास्त्रार्थ-स्थान निश्चित करने के लिए भेजा गया। स्वामी जी ने कोतवाल साहब को कहा कि साधारणतया मैं संन्यासी होने के कारण किसी के यहाँ विवाद करने नहीं जाता, परन्तु विवश करके हमें कोई चाहे जहाँ ले जाय। इस पर आनन्दबाग का स्थान शास्त्रार्थ के लिए नियत किया गया और काशी के विशुद्धानन्द, बालशास्त्री आदि सब महापंडित और महाराजा काशी भी अपने दल-बल व चमक-दमक के साथ नियत समय पर स्वामी जी से शास्त्रार्थ करने पहुँच गये। आरम्भ में ही स्वामी जी ने घोषणा करवा दी कि एक समय में एक पण्डित हमसे बात करे और वेदों को छोड़कर अन्य ग्रन्थ को प्रमाण न माना जाय। काशी के पण्डितों ने कुछ समय तो इस नियम का पालन किया, परन्तु अपनी पराजय होते देखकर सब एक-साथ चिल्लाने लगे। प्रासंगिक विषय को छोड़कर कोई न्याय की बात पूछने लगा तो कोई व्याकरण की, किसी ने स्मृति का प्रश्न किया तो दूसरा पुराण को ले बैठा। पण्डितों ने छल भी अनेक किये और अन्त को चार घण्टे के होहुल्ले के बाद धीरे-धीरे सब शास्त्रार्थ के स्थान से सरक गये।

काशी के इस प्रसिद्ध शास्त्रार्थ में बड़े-बड़े पण्डितों ने भी छल और धोखेबाजी से काम लिया। पं० माधवाचार्य ने संस्कृत के लिखे कुछ पत्रे



शास्त्रार्थ काशी।

दिखाकर उनको वेद का बतलाया। वे पृष्ठ गृह्य-सूत्र के थे। तिस पर भी रात्रि के समय पढ़ने के लिए प्रकाश का अच्छा प्रबन्ध नहीं था। उसी होहुल्ले में पण्डित लोग उठ खड़े हुए। पुलिस इन्स्पेक्टर ने काशी-नरेश से कहा भी कि आपके सन्मुख सत्य के गले में छुरी चल रही है। इस पर काशी-नरेश रघुनाथ प्रसाद जी पुलिस इन्स्पेक्टर को एक ओर ले जाकर समझाने लगे कि आप भी मूर्त्ति-पूजक हैं, अपने शत्रु को जैसे हो विजय करना उचित है।

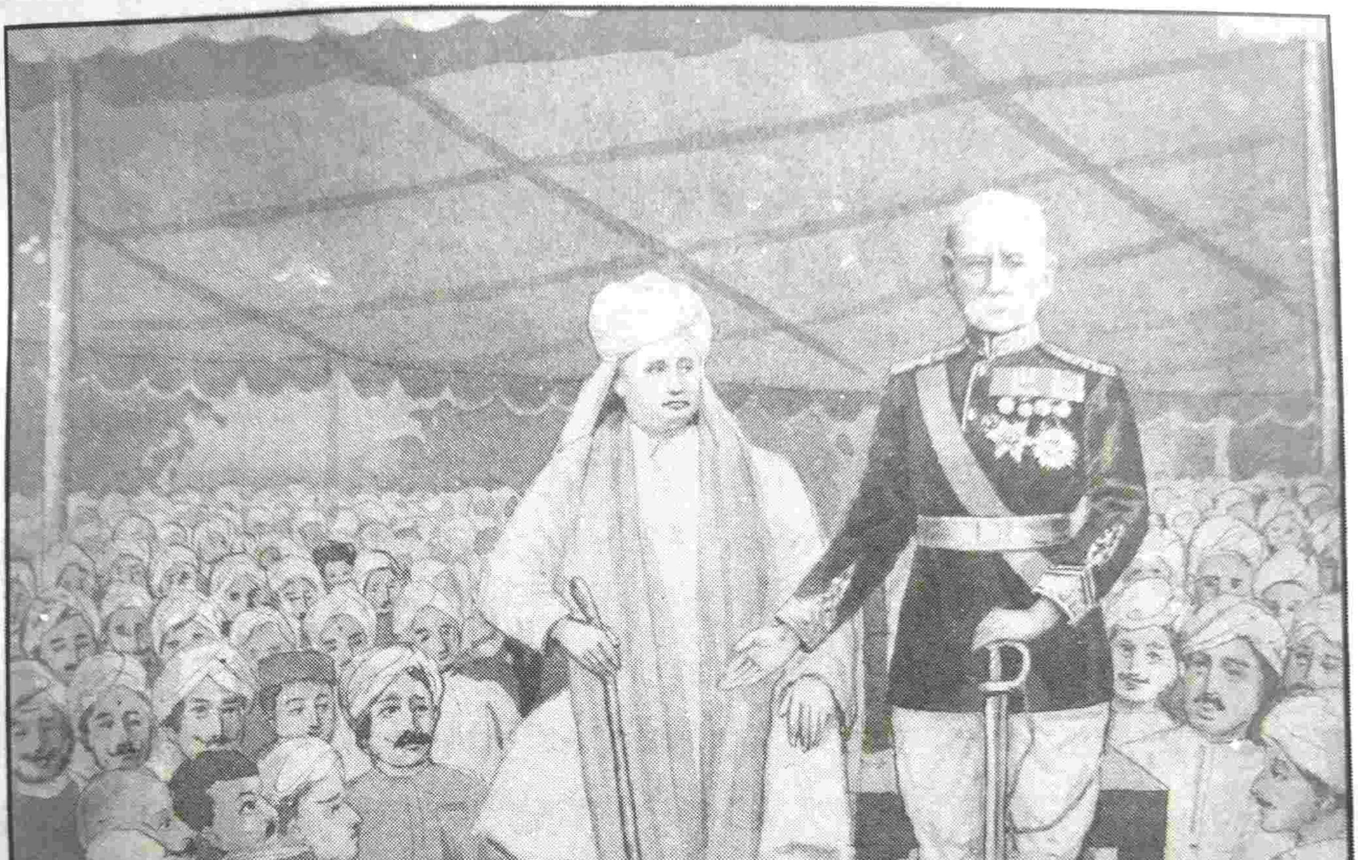
स्वामी जी इसी प्रकार काशी में सात बार आये। पर काशीवासी खूब हार चुके थे। फिर किसी बार भी शास्त्रार्थ का नाम न लेते थे। सातवीं बार स्वामी जी ने फिर ललकारा, पर कोई सामने न आया।

विशेष विवरण के लिए "काशी शास्त्रार्थ" नामक पुस्तक पढ़िये।

¤ ¤

## भारत के जंगी लाट रॉबर्ट्स और निर्भीक संन्यासी

काशी से चलकर प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर पहुँचे। वहाँ भी गंगा-तट पर प्रश्नोत्तर की झड़ी लग गई। वहाँ से स्वामी जी मिरज़ापुर आये। वहाँ भी उपदेश किया। सैकड़ों ब्राह्मणों ने मूर्ति-पूजा त्याग, सन्ध्या-अग्निहोत्र करना प्रारम्भ कर दिया। वहाँ से डुमराँव, आरा और पटना पधारे। पटना से दानापुर आये। यहाँ कई व्याख्यान हुए। उस समय भारत के जंगी लाट लॉर्ड रॉबर्ट्स भी पटना में पधारे हुए थे। एक दिन ईसाई मत पर व्याख्यान था। स्वामी जी का यश सरकारी पदाधिकारियों के कानों तक भी पहुँच गया था। वे भी उनके व्याख्यानों को सुनने के लिए उत्सुक हो गये थे। उस व्याख्यान में भारत के जंगी लाट भी व्याख्यान श्रवण करने के लिए पधारे। स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे। भारत के जंगी लाट महोदय के आते ही स्वामी जी की निर्भय व्याख्यान-धारा ईसाई मत की समालोचना में बह गई। व्याख्यान के अन्त में जंगी लाट महोदय ने स्वामी जी को प्रणाम किया और बड़ी प्रशंसा करते हुए कहा—



निर्भीक संन्यासी और भारत के जंगी लाट लार्ड रॉबर्ट्‌र्स।

"जब आप हमारी उपस्थिति में इस प्रकार बायबिल पर भाषण कर सकते हैं तो और छोटे-मोटे लोगों की तो आप क्या परवाह करते होंगे! ठीक है, सच्चे संन्यासी को संसार में किसी का कुछ भय नहीं।"

इस प्रकार निर्भीक होकर प्रचार करते हुए स्वामी जी मुंगेर होते हुए भागलपुर पहुँचे। वहाँ पर एक मास तक प्रचार किया। वर्द्धमान नरेश भी अपने चार नैयायिक पण्डितों के संग दर्शनार्थ आये।

वहाँ से स्वामी जी सम्वत् १९२९ में श्रीयुत चन्द्रशेखर सेन बैरिस्टर के उद्योग से कलकत्ते आये। सुरेन्द्र मोहन टैगोर जी के 'प्रमोद कानन' में आसन किया और धर्मोपदेश प्रारम्भ कर दिया। आते ही यहाँ के समाचारपत्रों में स्वामी जी के आगमन की धूम मच गयी। उनका अधिक समय बंगाली पण्डितों के साथ वाद-विवाद करते बीतता था।

'ब्राह्म समाज' के नेता केशव बाबू ने एक बार कहा, यदि स्वामी जी अंग्रेज़ी जानते होते तो इंगलैण्ड में आप मेरे बड़े सहायक होते। इस पर स्वामी जी ने भी उत्तर दे दिया कि मुझे आपकी संस्कृत से अनभिज्ञता देखकर शोक होता है।

कलकत्ता और हुगली में स्वामी जी का वहाँ के बड़े-बड़े पण्डितों से अलग-अलग और सम्मिलित विचार-विनिमय एवं शास्त्रार्थ आदि होता रहा। कलकत्ता से विदा होकर स्वामी जी ने बिहार, संयुक्त प्रान्त, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, गुजरात और बम्बई प्रान्तों के प्रायः सभी बड़े शहरों में दौरा लगाया, अनेक पण्डितों से शास्त्रार्थ किये, कई स्थानों पर आर्य-समाज की स्थापना की, तीन-चार ग्रन्थ प्रकाशित किये और महादेव गोविन्द रानाडे आदि प्रसिद्ध समाजसुधारकों से भी मिले। इस सब में उन्हें लगभग पाँच वर्ष लगे।

पश्चिमी भारत से स्वामी जी पुनः फर्रुखाबाद पहुँचे। वहाँ ईसाइयों पर आक्रमण हुआ। वहाँ से बनारस पहुँचे। वहाँ लाजरस कम्पनी में 'ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका' के छपाने का प्रबन्ध किया और जौनपुर से अयोध्या आकर सरयू के तट पर वेदभाष्य-भूमिका का लेखन प्रारम्भ कर दिया।

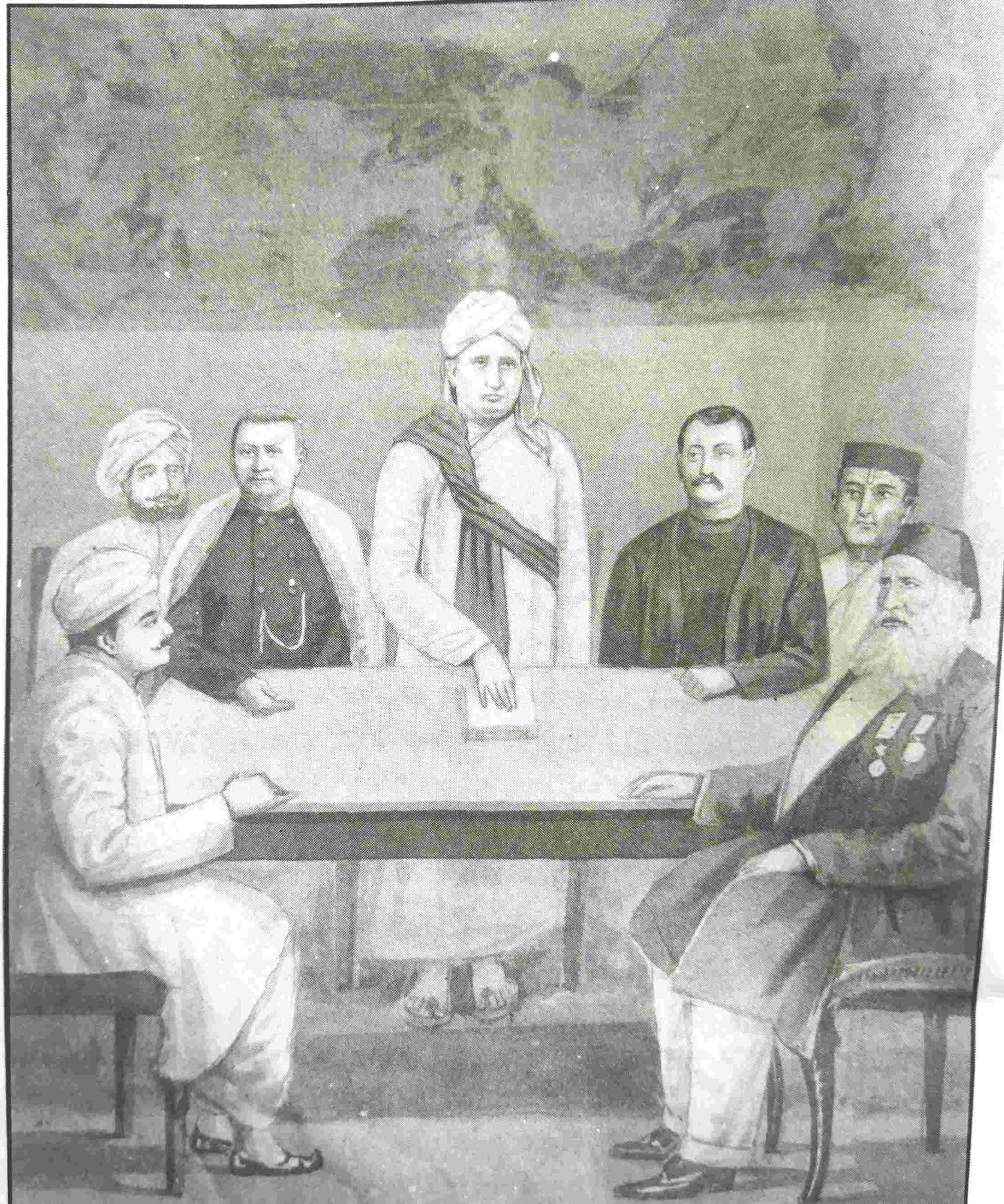
¤ ¤

# देहली दरबार

वहाँ से लखनऊ, शहजहाँपुर होते हुए बरेली पहुँचे। वहाँ से कर्णवास होते हुए सम्वत् १९३४ में दिल्ली में दरबार के अवसर पर उपस्थित हुए। वहाँ शेरमल के अनार बाग में शामियाने खड़े किये। पास ही रईसों के कैम्प थे। उपदेशों की झड़ी लगा दी। उस समय बहुत-से नरेश स्वामी जी से मिलने को तरसते रहे, परन्तु पौराणिक पण्डित उनको बहकाकर मिलने में विघ्न करते रहे।

दरबार के अवसर पर स्वामी जी के पधारने का मुख्य प्रयोजन यही था कि भारत के समस्त राजे-महाराजों तथा अन्य प्रतिष्ठित लोगों में आर्यसमाज के नाम और उद्देश्यों का प्रचार हो जाय। दूसरा प्रयोजन यह भी था कि इस अवसर पर देश-भर के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान्, शिक्षित पुरुष, धार्मिक उपदेशक अपने-अपने मन्तव्यों का प्रचार करने के निमित्त आवेंगे। इन सबसे एकत्र सम्वाद करने का उत्तम अवसर प्राप्त होगा।

देहली दरबार के समय वैदिक सन्देश की ध्वनि स्वामी जी ने महाराजा लोगों के कानों तक पहुँचा दी। महाराजा हुलकर तथा अन्यान्य कतिपय राजाओं ने यह उद्योग भी किया कि सम्पूर्ण देश के नृपतिगण एकत्र होकर स्वामी जी का उपदेश सुनें। पर राजाओं के अनेक कामों में व्यस्त होने के कारण यह उद्योग सफल न हो सका। इसके अतिरिक्त धर्म में विरोध दूर करने के निमित्त एक सभा स्वामी जी ने अपने ही स्थान पर आवाहन की जिसमें मुन्शी कन्हैयालाल जी, नवीनचन्द्र राय, केशवचन्द्र सेन, मुन्शी इन्द्रमणी जी, सर सय्यद अहमद खाँ, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि आदि विद्वान् सुधारक विद्यमान थे। बीच सभा में श्री स्वामी जी ने सभा के उद्देश्य वर्णन करते हुए कहा, "हम सब इस समय धार्मिक संशोधन में प्रवृत्त हुए हैं, हमें चाहिए कि अपने-अपने सन्देह निवारण करके सच्चे धर्म को शुद्ध भाव से ग्रहण करें और सर्व-सम्मत एक ही मार्ग का अवलम्बन करें जिससे भेदभाव, द्वेष, कुटिलता आदि दूर होकर हम सब लोग आपस में मिल जावें।" परन्तु नेता लोग भीतरी दुराग्रह का परित्याग न कर सके और इसी कारण सभा असफल होकर रह गई, कोई फल न निकला।



महारानी विक्टोरिया के दिल्ली राज्याभिषेक के समय ऋषि दयानन्द का केशवचन्द्र सेन, सर सैय्यद अहमद, नवीनचन्द्र राय प्रभृति सुधारकों के साथ देशोद्धार विषय पर वार्तालाप।

इसी अवसर पर बाबू केशवचन्द्र सेन ने स्वामी जी को प्रेरणा की कि यदि आप पूरी सफलता चाहते हैं तो प्रसिद्ध कीजिए कि "मैं जो कुछ कहता हूँ मुझसे ईश्वर कहाता है।" इस पर स्वामी जी ने इस पैगम्बरी ढोंग के करने से साफ इन्कार कर दिया। कहा—"वह ईश्वर सर्वव्यापक है। क्या वह किसी के कान में कुछ कहने आता है? मैं असत्य बात मुँह से नहीं निकाल सकता।" इस अवसर पर आर्य-समाज के छपे नियम बाँटे गये। इसी अवसर पर पंजाब से बड़े-बड़े व्यक्तियों ने स्वामी जी को अपने प्रान्त में निमन्त्रित किया।

देहली से मेरठ, सहारनपुर होते हुए स्वामी जी शाहजहाँपुर ज़िले के प्रसिद्ध चाँदापुर के मेले पर आमन्त्रित होकर पहुँचे।

¤ ¤

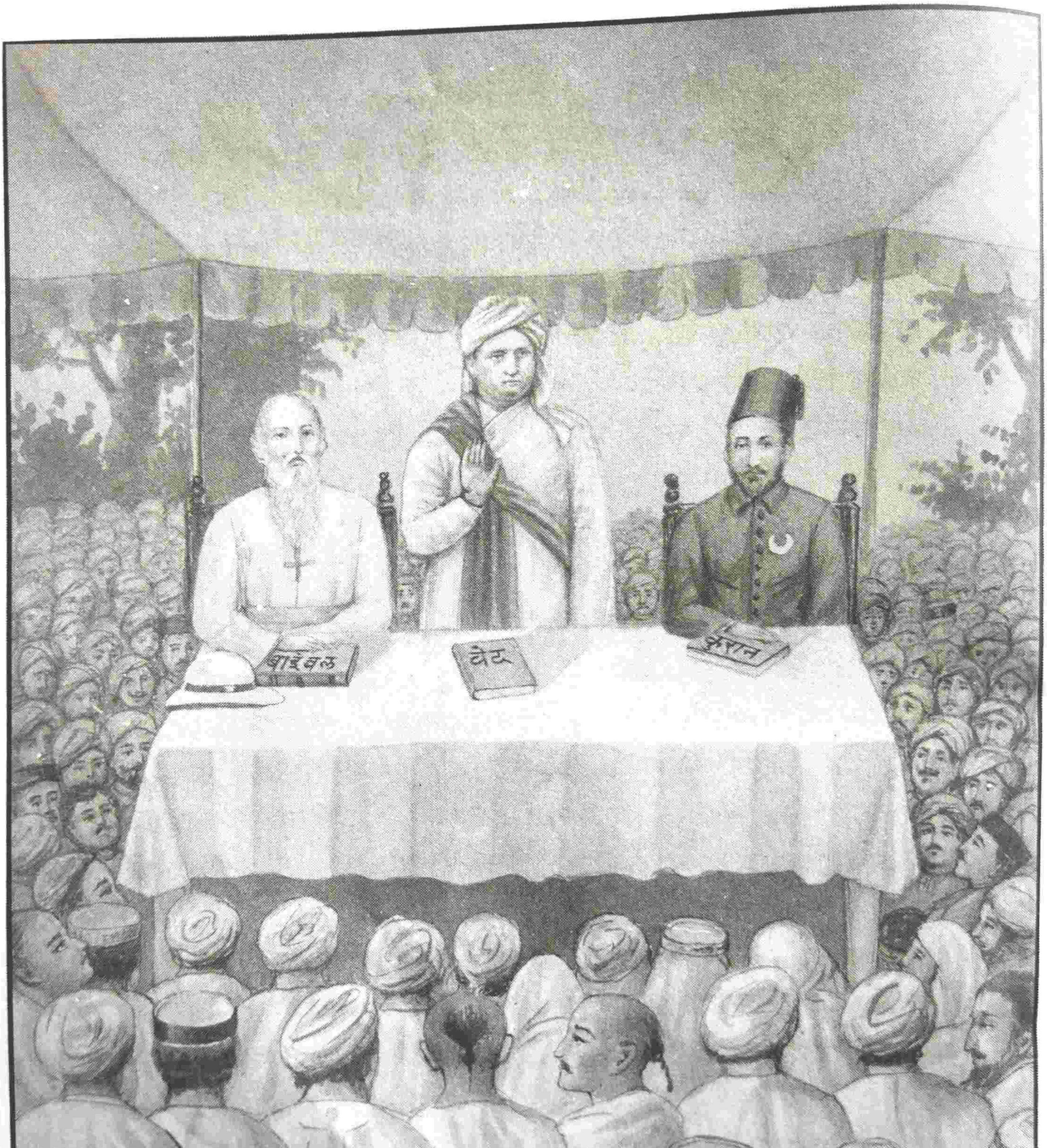
## चाँदापुर का मेला

शाहजहाँपुर के प्रसिद्ध रईस मुन्शी प्यारेलाल साहेब ने इस अवसर पर सब धर्मों के प्रसिद्ध विद्वानों को एकत्र करने का प्रबन्ध किया। स्वामी दयानन्द सरस्वती, पादरी टी० जे० स्कॉट, मुन्शी इन्द्रमणी, पादरी नवल साहेब, मौलाना मुहम्मद कासिम, पादरी जॉन टॉमसन, मौलाना सैय्यद अबुल मंसूर आदि विद्वान् एकत्र हुए।

पादरी लोग दलबल-सहित पहुँचे। दर्शकों की संख्या पचास सहस्र थी। २० मार्च को सभा-भवन भर गया। मौलवी, पादरी सभी कुर्सियों पर डटकर बैठ गये। मुक्ताप्रसाद जी ने भाई प्यारेलाल जी की ओर से सृष्टि-उत्पत्ति के विषय में पाँच प्रश्न किये।

पहले तो वक्ताओं की पहला-पहली में बहुत समय गया, आखिर पादरी स्कॉट महाशय ने ज्यों-त्यों करके कहा कि ईश्वर ने सृष्टि को नेस्ति से बनाया। रचना-काल का ज्ञान हमें नहीं है। सुख के लिए सृष्टि रची है।

मौलवी साहब ने कहा कि ईश्वर ने सृष्टि को अपने रूप से बनाया। कब बनाया है, इससे क्या मतलब? रोटी खाने से मतलब। 'कब बनी' पूछना




ईसाई और मुसलमानों के साथ सत्य धर्म विचार (मेला चान्दापुर)

बेफायदा है। सब पदार्थ मनुष्यों के लिए बने हैं। मनुष्य ईश्वर की स्तुति के लिए है। इस प्रकार मौलवी और पादरियों में ही आपस की चख-चख चली। अन्त में स्वामी जी ने गम्भीरता से कहा—"मेला सत्य की जिज्ञासा के लिए लगा है। परस्पर एक-दूसरे को झूठा कहने से विजय नहीं होती। वैर-विरोध छोड़कर सम्वाद करना विद्वानों का धर्म है। सृष्टि को परमात्मा ने जगत् के उपादान कारण परमाणु-रूप प्रकृति से बनाया है। वह अनादि एवं अनन्त है। अभाव से भाव नहीं हो सकता। कारण के गुण कार्य में भी होते हैं। अतः जगत् का कारण नेस्ति नहीं है। नहीं तो कार्य भी नेस्ति ही होगा। यदि ईश्वर जगत् को स्व-रूप में बनाता तो जगत् भी ईश्वर-रूप होता। अन्य मतावलम्बी नहीं कह सकते कि सृष्टि कब बनी। इसका उत्तर हम आर्य लोग दे सकते हैं। प्रत्येक शुभ कार्य में आर्य पंडित संकल्प में ही सृष्टि के आदि से आज तक के वर्ष, तिथि, दिन, मास, घण्टा, घड़ी, पल तक की गणना कर लेते हैं। जीव और जगत् का कारण स्वरूप से अनादि है। पूर्व-प्रलय के शेष कर्मों का फल देने के लिए ईश्वर सृष्टि रचता है। सृष्टि-रचना का गुण ईश्वर में स्वाभाविक है। लोग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष प्राप्त करें, इसलिए यह सृष्टि रची है।"

स्वामी जी का भाषण सुनकर विपक्षियों ने आशंकाएँ कीं और उनका स्वामी जी ने समाधान भी किया। स्वामी जी के कथन के बाद और मतवादी भी बोले, परन्तु उनके कथन नीरस, निष्प्रभाव तथा निष्फल ही रहे। दूसरे दिन मेला बिखर गया। पादरियों ने अपना-अपना रास्ता लिया। मेले के अनन्तर भी बहुतों ने अपनी शंकाएँ निवारण कीं।

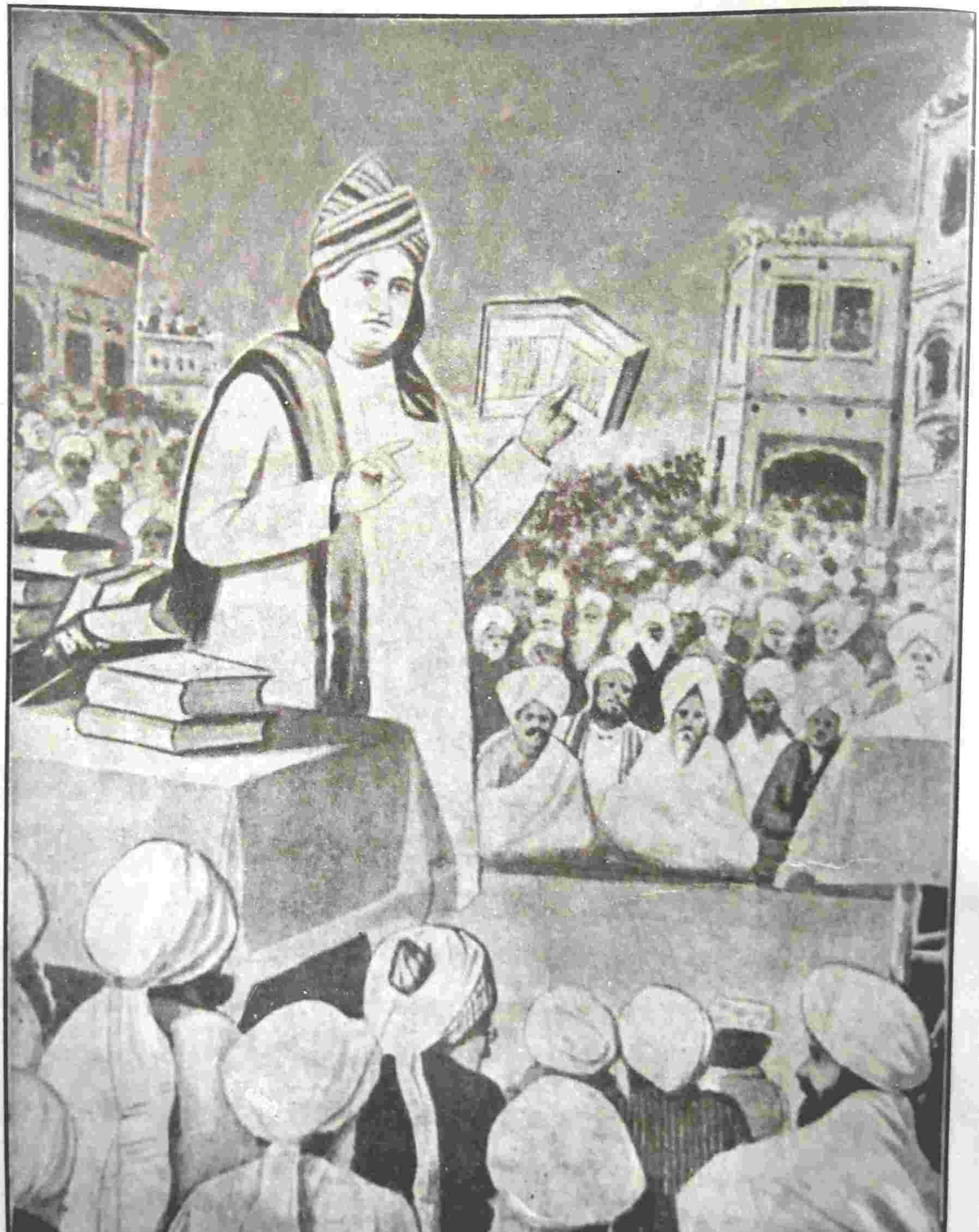
चाँदापुर का मेला समाप्त कर स्वामी जी पंजाब की ओर चले।

विशेष विवरण के लिए "चाँदापुर का मेला" पुस्तक देखें।

¤ ¤

## पुष्प-वर्षा

पंजाब में लुधियाना और लाहौर में प्रचार, शास्त्रार्थ और आर्य-समाजों की



अमृतसर में स्वामी जी के व्याख्यानों में पत्थरों की वर्षा और स्वामी जी का भाव
"यह फूलों की वर्षा है।"

स्थापना करते हुए आषाढ़ बदी ९, सं० १९२४ को स्वामी जी अमृतसर पहुँचे। स्वामी जी का आगमन लोगों में एक अपूर्व उद्वेग पैदा करता था। लोग सहस्रों की संख्या में दर्शनार्थ चल देते थे। प्रतिमा-पूजन, अवतारवाद, मृतक श्राद्ध, अज्ञानमूलक मिथ्या विश्वासों का खण्डन बराबर होता ही था। इससे पौराणिक पण्डितों में हलचल मच गई। यजमानों ने पौराणिक पंडितों को शास्त्रार्थ में जुटाने का प्रयत्न किया। पं० रामदत्त जी जो शास्त्रार्थ के लिए विवश किया गया, पर वे अद्वितीय वेद के विद्वान् की अद्वितीयता को जानकर शास्त्रार्थ से पीछा छुड़ाकर हरिद्वार चले गये। एक बार एक पाठशाला के पंडित ने लड्डुओं का लाभ देकर रात्रि को उपदेश के अवसर पर छोटे-छोटे लड़कों से ईंटें चलवाईं। व्याख्यान के बीच ईंट-रोड़े आने पर स्वामी जी बड़े धैर्य से सब-कुछ देखते रहे और बराबर व्याख्यान देते रहे। श्रोता लोगों में कोलाहल मच गया। उस समय जनता को शान्त कर स्वामी जी ने गम्भीर स्वर में कहा—"सज्जनो! घबराओ मत, यह पुष्प-वर्षा है।"

बाद में रहस्य खुला। ईंट और रोड़े फेंकते हुए लड़कों को पुलिस ने पकड़ लिया था। वे पकड़कर स्वामी जी के सामने लाये गये। बालकों की रोते-रोते घिग्घी बँध गई थी। स्वामी जी ने बड़ी प्रसन्नता से उन बालकों को पुचकारकर, सिर पर हाथ रखकर, ठुड्डी छूकर दिलासा देते हुए पूछा—'क्यों बच्चो! तुमने ऐसा काम क्यों किया था?' उन्होंने घिघियाते-घिघियाते अध्यापक की सब पोल खोल दी और कह दिया कि हमें लड्डू देने का लालच देकर हमारे हाथों से ये पत्थर-रोड़े फिंकवाये गये थे।

स्वामी जी ने तत्काल लड्डू मँगा लिये और लड़कों को मिष्ठान्न बाँटकर कहा—'तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डू न भी दे, इसलिए मैं ही देता हूँ।' स्वामी जी ने उन लड़कों को पुलिस के हाथ से छुड़वा दिया।

अमृतसर में ४० नवयुवकों को ईसाई होने से बचाया। वे ईसाई स्कूल में पढ़कर ऐसे कुमार्ग पर चले गये थे।

¤ ¤

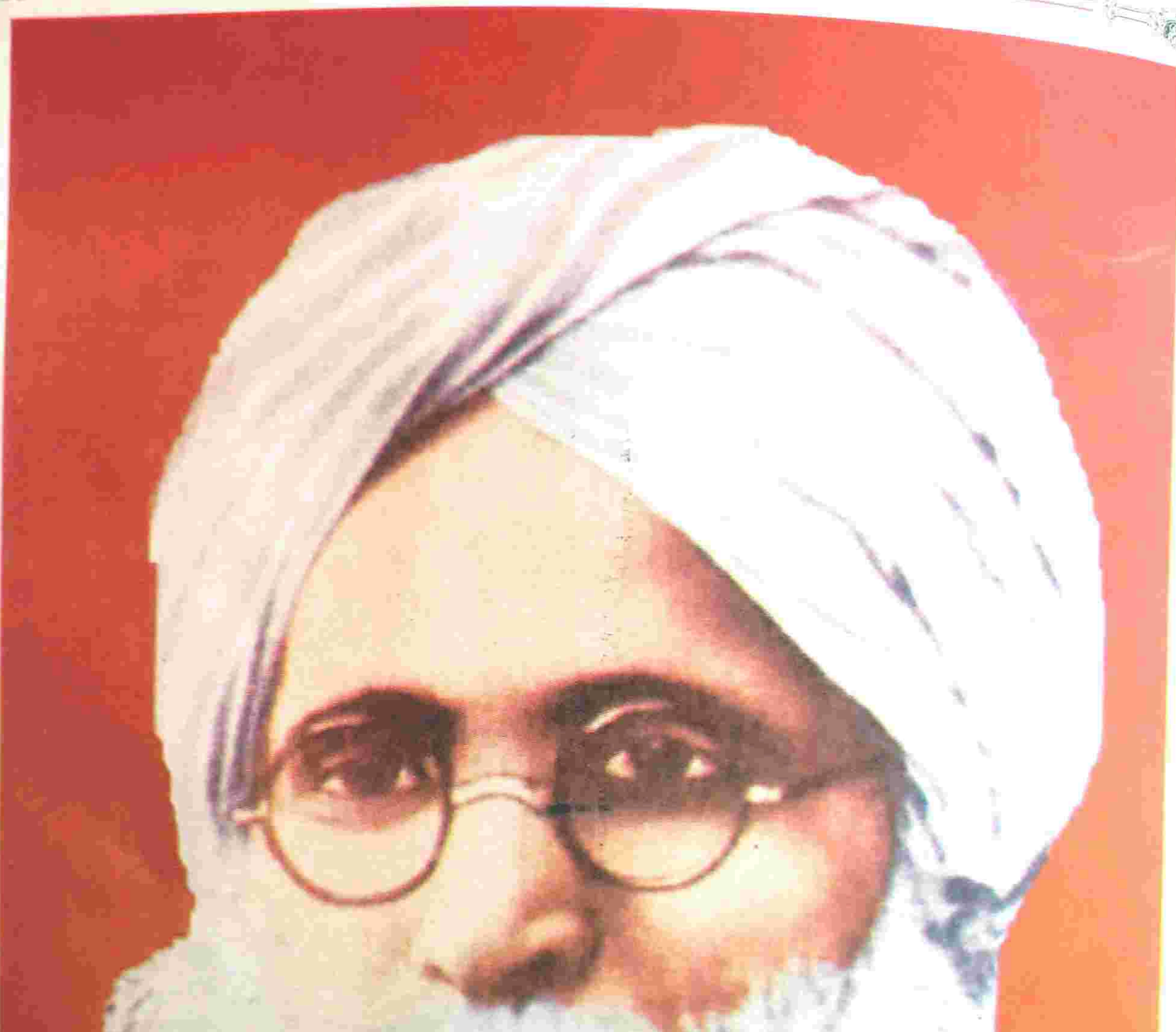
# बाल ब्रह्मचारी का अनन्त बल

अमृतसर से स्वामी जी गुरुदासपुर और गुरुदासपुर से जालन्धर आये और सरदार विजयसिंह के यहाँ ठहरे। वहाँ नित्य उपदेश, कथा-वार्ता हुआ करती थी। एक दिन सरदार महाशय ने स्वामी जी से ब्रह्मचर्य-विषयक चर्चा छेड़ी। बहुत-से प्रश्न हो चुकने के उपरान्त सरदार महाशय ने पूछा—"स्वामी जी महाराज, आप ब्रह्मचर्य की बहुत महिमा बतलाते हैं, परन्तु कभी प्रत्यक्ष देखने को मिले तब विश्वास हो सकता है।" इस पर स्वामी जी ने कहा—"देखो, शास्त्रों में ब्रह्मचर्य का जो वर्णन किया है वह सर्वथा सत्य है।" इस पर सरदार साहेब कह उठे कि "महाराज, आप तो बाल ब्रह्मचारी हैं, आपमें तो वैसा बल प्रतीत नहीं होता है?" इस पर स्वामी जी ने यह कहकर कि 'कभी देखा जाएगा' उस समय तो टाल दिया, पर जब सरदार साहेब नमस्कार करके विदा हुए और अपनी फिटिन पर चढ़कर कोचवान को गाड़ी चलाने का हुक्म दिया तो गाड़ी आगे न बढ़ी। कोचवान घोड़ों की पीठ पर चाबुक बरसाने लगा। पर घोड़े पिछले दो पाँवों पर खड़े-खड़े नाचते रहे और गाड़ी आगे बढ़ने का नाम तक नहीं लेती थी। आखिर क्या हुआ, यह देखने के लिए सरदार साहेब ने मुँह फेरकर पीछे जो देखा तो स्वामी जी खड़े थे और चक्के पर स्वामी जी का हाथ पड़ा था। सरदार विजयसिंह के देखते ही स्वामी जी ने पहिया छोड़ दिया और बोले—"ब्रह्मचर्य के बल का एक दृष्टान्त तुमको मिल, गया।" सरदार महाशय चकित होकर चले गये।

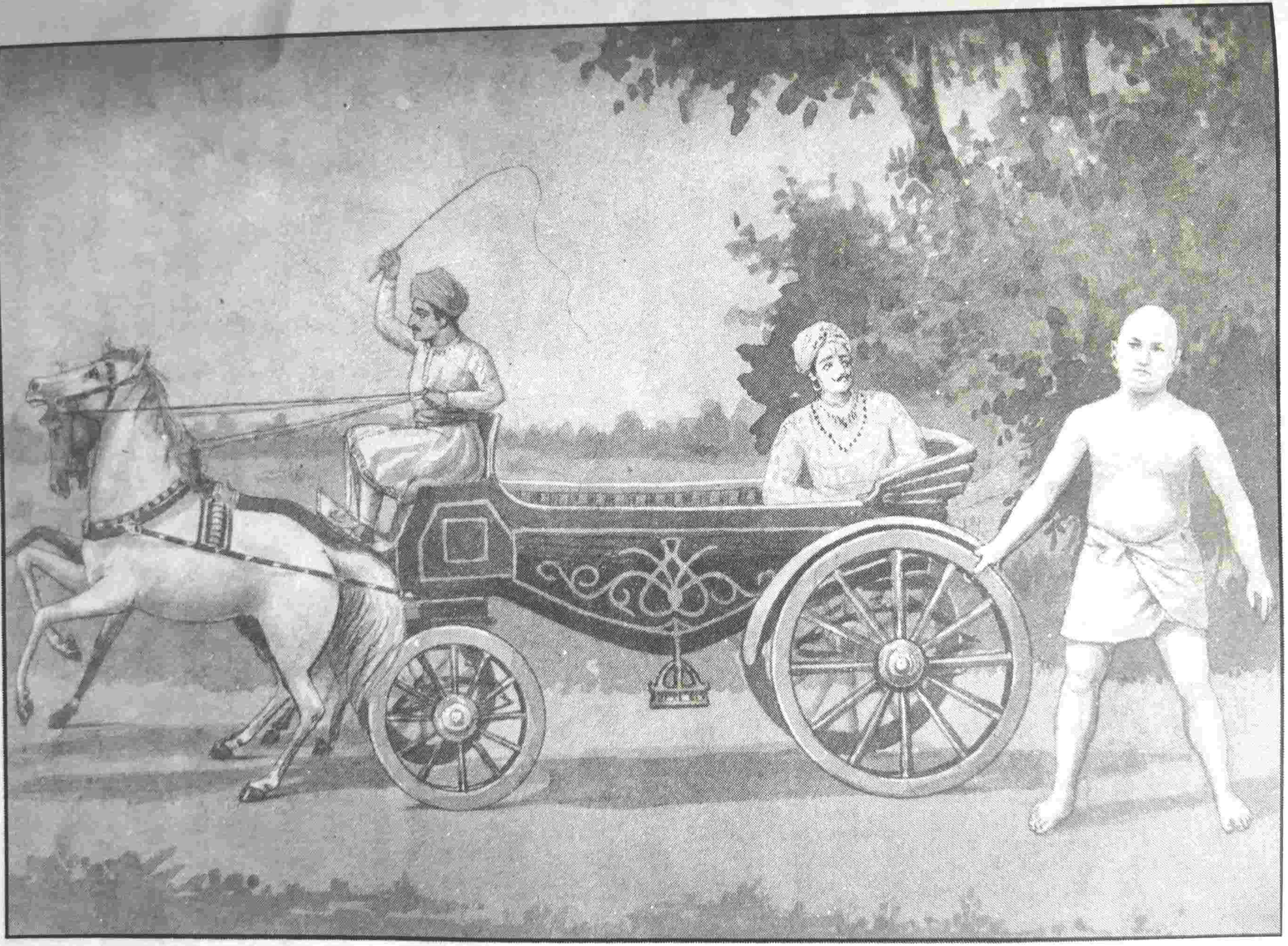
इसके अनन्तर स्वामी जी ने रावलपिंडी, पोठोहार, जेहलम, गुजरानवाला और मुलतान आदि पंजाब के प्रायः सभी शहरों में भाषण किया और पौराणिकों के माया-जाल की पोल खोली। कई जगह उन पर ईंट-पत्थरों की वर्षा हुई और पौराणिक पण्डितों ने छल से काम लेना चाहा, परन्तु स्वामी जी अपने प्रचारकार्य को दृढ़ता से आगे बढ़ाते रहे। पंजाब से संयुक्तप्रान्त के शहरों में और वहाँ से राजपूताना गये। राजपूताना के भ्रमण ने वहाँ के कई राजाओं के हृदयों में स्वामी जी के लिए आदर के भाव उत्पन्न कर दिये और वे उन्हें अपनी रियासतों



मुनिवर पं. गुरुदत्त जी



महात्मा हंसराज जी



ऋषि दयानन्द के ब्रह्मचर्य बल का एक प्रमाण।

में बुलाने लगे। स्वामी जी ने भी मध्यप्रान्त के शहरों का एक दौरा लगाने के पश्चात् लगभग सम्वत् १९३९ में इन राजाओं की इच्छा को पूर्ण किया।

¤ ¤

## शाहपुराधीश को दीक्षा देना

उदयपुर में आकर स्वामी जी सज्जन-निवास में ठहरे। उनके सत्संग से महाराज साहेब ने सब अवगुण त्याग दिये और स्वामी जी से नित्य वैशेषिक दर्शन, पातंजल योगसूत्र, मनुस्मृति आदि का पढ़ना और योगाभ्यास सीखना शुरू किया। वे स्वामी जी की लिखी दिनचर्या से चलते थे। श्री स्वामी जी ने इस स्थान पर समस्त क्षत्रिय राजपूतों के लिए एक गुरुकुल खोलने की सम्मति दी थी। वहाँ राजकीय कामों में से उर्दू को निकालकर देवनागरी का प्रचार किया, अरबी के शब्दों के स्थान में संस्कृत के शब्द प्रचलित किये। वहाँ ही कविराज श्यामलदास जी से स्वामी जी ने कहा था कि 'मेरे मरने के बाद मेरी अस्थियों को किसी खेत में डलवा देना, समाधि का चिह्न कभी न बनवाना।' कविराज जी उनकी मूर्ति रखना चाहते थे। स्वामी जी ने यह कहकर कि यही मूर्ति-पूजा की जड़ है, वैसा करने से रोका।

फाल्गुन अमावस १९३९ को स्वामी जी उदयपुर से चित्तौड़गढ़ होते हुए शाहपुर में आ विराजे। शाहपुराधीश श्री नाहरसिंह तो स्वामी जी के विशेष प्रेमी भक्त थे। प्रथम पाँच दिन स्वामी जी के पास उन्होंने अपने हृदय के सब सन्देह खोलकर कहे और उनका समाधान कराया। उनसे मनुस्मृति आदि ग्रन्थ पढ़ना आरम्भ किया। शाहपुरा में एक ब्राह्मण युवक को संन्यास धारण कराया जिसका नाम ईश्वरानन्द रखा गया। उसकी ५ रुपए मासिक वृत्ति लगवाकर उसे प्रयाग पढ़ने भेज दिया। यहाँ स्वामी जी नित्य नियम से वेदभाष्य कराया करते थे और शेष अवकाश में भक्तजनों को नाना प्रकार के उपदेश देते थे। यहाँ ही उन्हें जोधपुर-नरेश महाराजा जसवन्तसिंह का निमन्त्रण प्राप्त हुआ।



महर्षि दयानन्द सरस्वती
यह चित्र आर्यसमाज दानापुर बिहार के सौजन्य से प्राप्त हुआ है।
साथ में श्री रामानन्द ब्रह्मचारी खड़े हैं।

जोधपुर जाने को उद्यत हुए तो शाहपुराधीश ने स्वामी जी से विनय किया—'भगवन्! वहाँ राजा लोग भोग-विलास में सने रहते हैं, वहाँ वेश्याओं का विशेष खण्डन न करें।' स्वामी जी ने उत्तर दिया—'मैं बड़े कटीले वृक्षों को निहरने से नहीं काटता। उन पर कुल्हाड़ा चलाने की आवश्यकता होती है।'

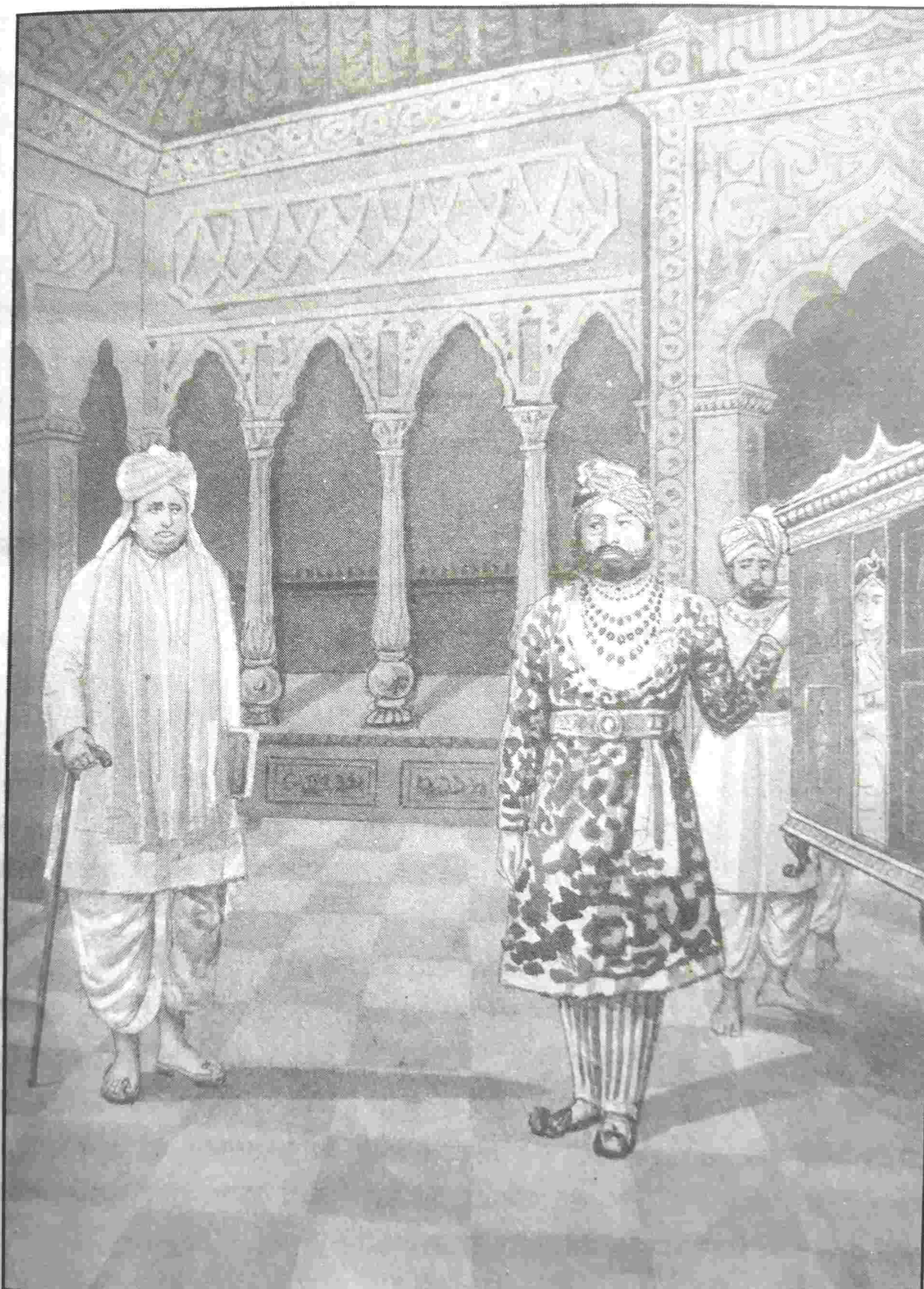
जोधपुर जाते समय आर्य-पुरुषों ने स्वामी जी से कहा कि—'वहाँ के लोग बहुत कठोर प्रकृति के होते हैं, कहीं सत्योपदेश से चिढ़कर आपको कष्ट न दें।' स्वामी जी ने कहा कि 'यदि लोग हमारी अँगुलियों की बत्तियाँ बनाकर भी जला दें तो कोई चिन्ता नहीं। मैं सत्योपदेश करने से नहीं टलूँगा।' स्वामी जी अजमेर से होते हुए जोधपुर पहुँचे।

¤ ¤

## वेश्यागामी नरेश को फटकार

जोधपुर-नरेश ने स्वामी जी को लिवा लाने के लिए एक हाथी, तीन ऊँट, तीन रथ, एक सेज-गाड़ी और चार अश्वारोही सैनिक भेजे। दो रात चलकर स्वामी जी महाराज ने जोधपुर में बड़े स्वागत से प्रवेश किया। स्वामी जी फैजुल्ला खाँ के उद्यान में ठहरे। छः सैनिक और एक पहरेदार हवलदार उनकी रक्षार्थ रख दिया गया। राव राजा तेजसिंह उनकी सेवासुश्रूषा की देख-रेख करने लगे। जोधपुर पधारने के एक दिन बाद महाराजा जसवन्तसिंह जी १०० रुपए ५ स्वर्ण-मुद्राओं सहित भेंट लेकर श्रीचरणों में उपस्थित हुए। चरणों में नमस्कार कर फर्श पर बैठ गये। उस समय ३ घण्टे तक स्वामी जी ने मनुस्मृति के अनुसार राज-धर्मों का उपदेश किया और आगे के लिए व्याख्यान व उपदेश के स्थान का निर्णय हो गया। नित्य व्याख्यान-भवन में सायं ४ बजे से ६ बजे तक समस्त जोधपुरवासी प्रजा और शासकजन एकत्र हो उपदेशामृत श्रवण करते थे।

एक दिन स्वामी जी आमन्त्रित होकर राज-महल में जोधपुराधीश को दर्शन देने के निमित्त गये। निधड़क होकर स्वामी जी ने महल में प्रवेश किया। दैववश वहाँ वेश्या 'नन्ही भगतिन' भी आई थी। स्वामी जी के आगमन को सुनकर



वेश्यागामी नरेश को फटकार।

महाराज बड़े असमंजस में पड़े और वेश्या 'नन्ही भगतिन' की पालकी को बहुत शीघ्रता से उठवा देने की कोशिश करने लगे तथा जल्दी के मारे अपना कन्धा भी पालकी में लगा दिया।

'नन्ही भगतिन' उस समय पालकी के भीतर से बात कर रही थी। जोधपुर-महाराज की यह शोचनीय दशा देखकर महर्षि के हृदय में क्षोभ उत्पन्न हुआ। इसलिए अपने उपदेश में स्वामी जी ने देश के विलासी नरेशों के दुश्चरित्रों के चित्र खींचे और स्पष्ट शब्दों में कहा कि—'सिंह अब कुत्तों के समान हैं। ये वेश्याएँ कुतिया हैं। कुतियों से सम्बन्ध करना कमीने कुत्तों का काम है, वीर सिंहों का नहीं।' महाराजा-जोधपुर पर इस उपदेश का गहरा असर पड़ा।

इधर स्वामी जी चक्रांकितों की पोप-लीला पर कुठार चला रहे थे। उधर पौराणिक पण्डितों की लीला मन्द हो गई थी, फलतः ये सभी विरोधी होकर महर्षि के प्राणों के प्यासे बन गये थे। इन सब ने मिलकर स्वामी जी के भृत्यों को रुपयों का लालच देकर अपने साथ मिलाया। कल्लू कहार तो ६-७ सौ रुपयों का माल चुराकर चम्पत हुआ और फिर उसका पता भी नहीं चला। गौड़ मिश्र रसोइया (कोई उसका नाम जगन्नाथ बतलाते है) ने विष देने की ठान ली। इस ब्रह्महत्यारे ब्राह्मण-पातकी ने २९ सितम्बर को दूध में ज़हर मिलाकर स्वामी दयानन्द के प्राणों पर वार कर डाला। रात को भारी उदरशूल और वमन होते रहे। शरीर में भारी निर्बलता हो गई। डॉक्टर अलीमर्दानखाँ की दवा के असर से वह रोग और भयंकर हो गया। इनकी दवा भी भगवान् जाने क्यों जले पर नमक सिद्ध हुई। मर्ज़ बढ़ता ही गया ज्यों-ज्यों दवा की!

११ अक्तूबर १८८३ को स्वामी जी के रोगग्रस्त होने का समाचार अजमेर के एक सभासद् ने 'राजपूताना' गज़ट में पढ़कर सब आर्य पुरुषों को सुनाया। सुनते ही आर्य-पुरुषों में विक्षोभ उत्पन्न हुआ। सेठ जेठमल जी अजमेर से जोधपुर आ गये और समाचार लेकर अजमेर लौट आये। वास्तविक दशा सुनकर आर्य-पुरुष दुःखित हुए। स्वामी जी की विषम रोगग्रस्तता का समाचार समस्त भारत में फैल गया। सब ओर से तारें आने लगीं।

¤ ¤



महर्षि दयानन्द सरस्वती
शाहपुराधीश स्वर्गीय श्री महाराजा नाहरसिंह जी ने मथुरा शताब्दी के अवसर पर
आर्य चित्रावली में प्रकाशनार्थ कृपापूर्वक प्रदान किया।

# विषदाता को अभय-दान

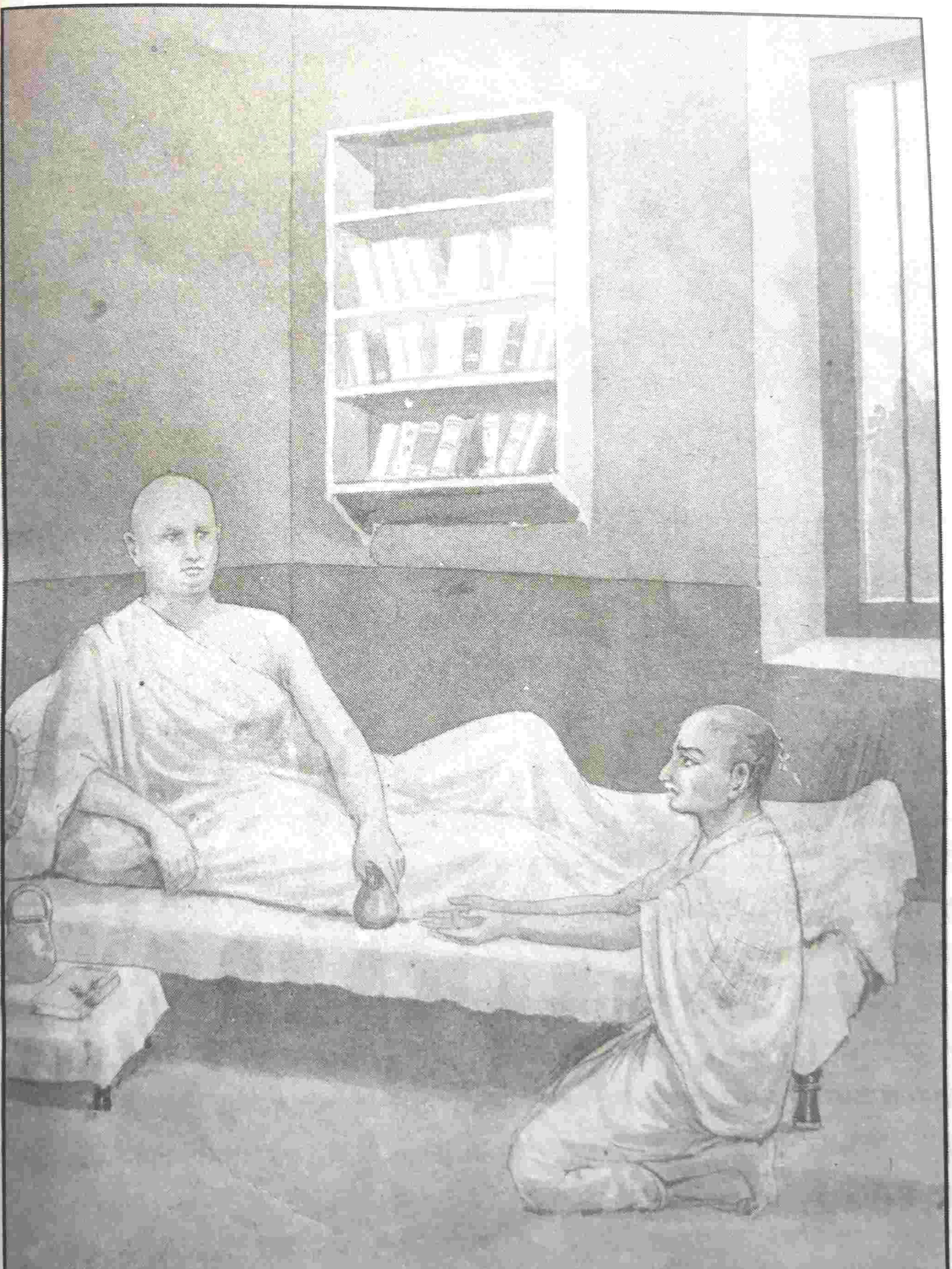
इधर महर्षि दयानन्द अपने नाम के अनुरूप दयानन्द ही थे। रोग की विषैली ज्वाला से सन्तप्त होते हुए भी अपने अनिष्टकारी सेवक का अनिष्ट देखना उनका दयामय हृदय सहन नहीं कर सकता था। इस कारण यह जानकर भी कि पाचक जगन्नाथ ने उनको विष दिया है, अपने प्राण-पखेरुओं के बधिक उस ब्रह्मघाती पाचक ब्राह्मण जगन्नाथ को अपने पास बुलाया और उसकी करनी उसके सम्मुख रखकर उससे अपराध स्वीकार कराया और बोले—"जगन्नाथ! मेरे शरीर के नाश हो जाने से मेरा सारा काम अधूरा रह गया! तुम जानते हो इससे लोकहित की कितनी हानि हुई! विधाता के विधान में ऐसा ही होना था। तुम्हारा इसमें क्या दोष! लो ये रुपये तुम्हें देता हूँ। तुम्हारे काम आयेगा। जैसे बने अब राठौर राज्य की सीमा से तुम पार हो जाओ! सीधे नैपाल राज्य में चले जाओ। वहाँ ही तुम्हारे प्राण बच सकेंगे। अब देर न करो, चुपचाप भाग जाओ। तुम मेरी ओर से निश्चिन्त रहना।"

¤ ¤

# मृत्यु-शय्या

इस प्रकार ब्रह्मघाती को बचाने के बाद स्वामी जी ने आर्य-पुरुषों को बुलाकर अपनी शारीरिक अवस्था पर विचार किया तो सबने उन्हें अजमेर चलने की सलाह दी। तदनुसार स्वामी जी अजमेर में बड़े आराम से सेवा-सुश्रूषा के भीतर एक कोठी में ठहरा दिये गये। डॉक्टर लक्ष्मीदास जी का इलाज शुरू हुआ, पर शरीर की रोग-दशा में कोई अन्तर नहीं पड़ा। एक बार स्वामी जी ने अपने सेवकों से मसूदा चलने को कहा, परन्तु सेवक लोग रोग-दशा में ऐसा करने में असमर्थ थे। इस पर स्वामी जी ने कहा—"दो दिन में हमें पूरा आराम हो जायेगा।"

स्वामी जी के सारे शरीर में छाले-छाले दीखने लगे! कार्तिक की



विष देनेवाले जगन्नाथ पाचक को (प्राणरक्षार्थ) रुपये दे विदा करना।

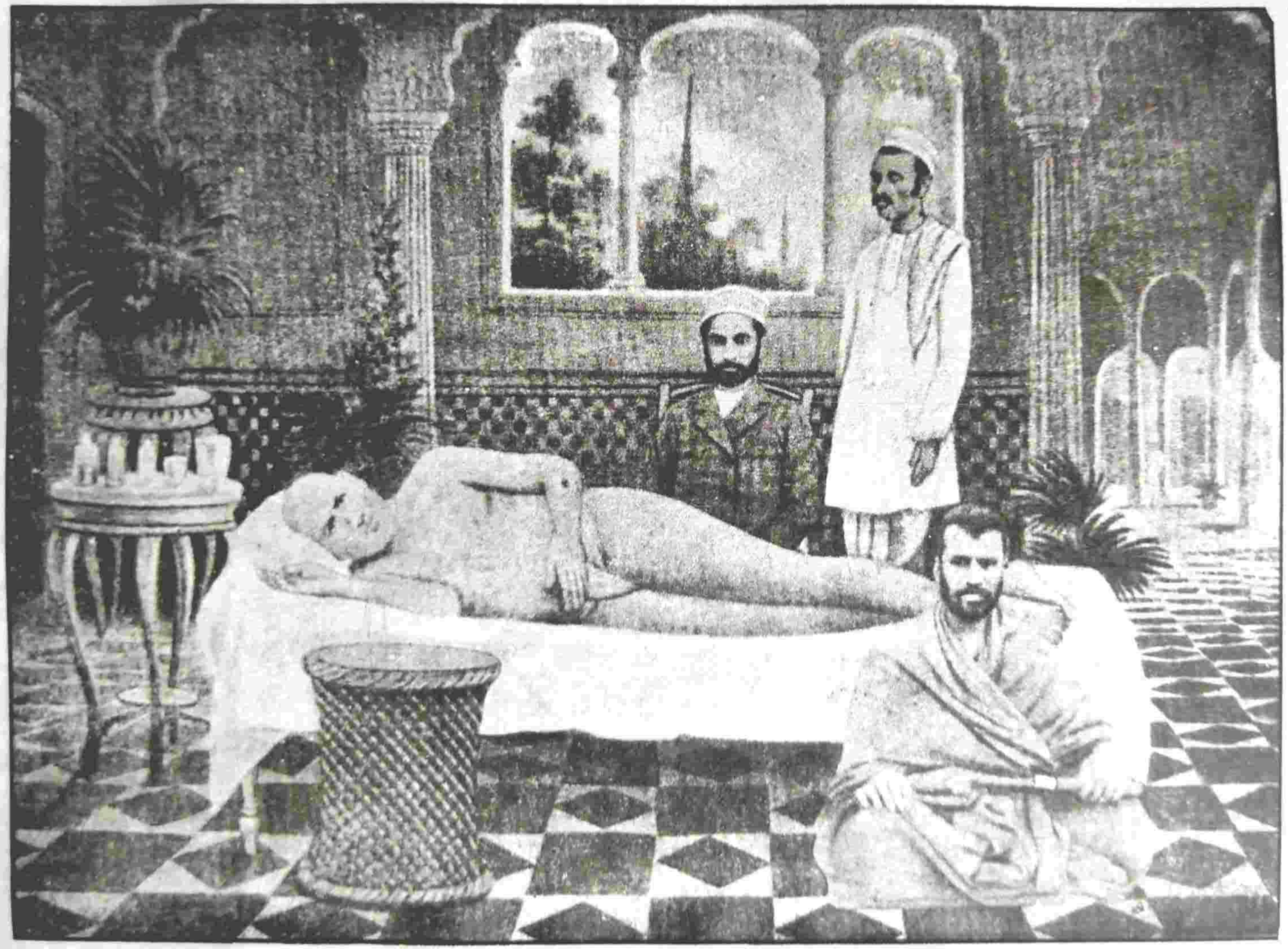
अमावास्या, दीपमाला का दिन था। महर्षि का शरीर अत्यन्त निर्बल हो गया था। डॉक्टर न्यूटन साहब देखने आये। इसी प्रकार हकीम पीर जी देखने आये। ये दोनों इस धैर्य-धनी रोगी को देख आश्चर्य में थे। रोम-रोम में विष की ज्वाला थी, परन्तु रोगी शान्त और धीर होकर सब रोग-भोग सहता जा रहा था।

शरीर में कफ की वृद्धि होने लगी। कई उपचार किये गये परन्तु सब विफल। दिन के ११ बजे श्वास बढ़ने लगा। शौच की हाजत हुई, शौच किया, स्वयं जल लिया, हाथ धोकर दतवन की, कुछ देर बैठे और फिर स्वयं लेट गये। पूछने पर कहा—"तबीयत अच्छी है। एक मास के पश्चात् आज का दिन आराम का है।" आज्ञा दी कि "सब द्वार खोल दो!" द्वार और खिड़कियाँ खोल दी गईं।

सायं समय स्वामी जी ने सब आर्य-पुरुषों को बुलाया। मुख्य-मुख्य व्यक्तियों से थोड़ी बात करके आशीर्वाद दिया और फिर सबको पीछे खड़े हो जाने के लिए आदेश दिया। केवल पं० गुरुदत्त विद्यार्थी सामने बैठे रहे। महर्षि ने सबको एक बार कृपामयी दृष्टि से देखा, और नेत्र बन्द कर लिये। वेद-मन्त्रों का पाठ प्रारम्भ किया, संस्कृत में कुछ प्रार्थना की, ईश्वर के गुणों का स्मरण किया, बड़े हर्षित और प्रफुल्लित रूप में समाहित-चित्त होकर पुनः नयन खोल दिये; कहने लगे—'हे दयामय! हे सर्वशक्तिमन्, परमेश्वर! तेरी यही इच्छा है, तेरी इच्छा पूर्ण हो! अहा! तैने अच्छी लीला की!' यह कहकर स्वामी जी सीधे लेट गये और पुनः करवट लेकर श्वास को रोका और एक ही निःश्वास में जीवन-लीला समाप्त की।

सन्ध्या के ६ बजे दीवाली का दिन, कार्तिक बदी अमावस १९४० वि०, ३० अक्तूबर १८८३ ई०, मंगल के दिन महर्षि सूर्यमण्डल के साथ-साथ इस जीवन-सन्ध्या में स्वयं अस्त हो गये! अपने पीछे दीपमाला के दीपकों के समान लक्षों आर्य-पुरुषों के हृदय-दीपकों में अज्ञानान्धकार का नाश करने के लिए आर्य ज्योति को जगा गये।

योग को अगार गिरधार दृढ़ आसन को,
शिक्षक महीपन को त्रिदिव सिधा गयो।



महर्षि दयानन्द सरस्वती मृत्यु शय्या पर।

कुटिल कुराहिन को वाम मत चाहिन को,
हाय पशु हायन को इष्ट दिन आइगो।
कहें जयकरण चार वर्ण के विवरण को,
धर्म निज दयानन्द परम गति पाइगो।
तीन वेद शासन को सुमति प्रकाशन को,
आज सत्य भाषण को वासन विलायगो।

—कवि श्यामलदास

¤ ¤

## ऋषि का गुणगान

दयानन्द देश हितकारी,
तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
अविद्या जग में छाई थी, गफलत की नींद आई थी।
तेरा आना था गुणकारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
पतंजलि व्यास हो गुज़रे, भारत के दाग धो गुज़रे।
तेरे आने की थी बारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
तू वेदों का प्यारा था, तू भारत का सितारा था।
तेरे दर्शन की बलिहारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
तेरे जो पास आते थे, दिली संशय मिटाते थे।
सभी भारत के नर-नारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
तेरे तेजस्वी चेहरे से, तेरी ब्रह्मचर्य विद्या से।
डरे पापी अत्याचारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
चलाई ब्रह्म की पूजा, समाजें खुल गईं हर जा।
तेरा उपकार है भारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥
भारत के भाग खोटे थे, हुए स्वामी जुदा हमसे।
हुआ दुख सबको है भारी, तेरे हिम्मत की बलिहारी॥

¤ ¤







कोई भगवान् के दस अवतार मानता है, कोई चौबीस गिन देता है। वेद कहता है–परमात्मा का कोई आकार ही नहीं तो अवतार किसका ? परन्तु गीता में भगवान् कहते हैं–'सम्भवामि युगे युगे'–अधर्म बढ़ जाय तो पुनः धर्म-स्थापना के लिए जन्म लेता हूँ (सृजाम्यहम्)। इतिहास पर दृष्टिपात करें तो यह कुछ-कुछ सत्य-सा लगता है–

सत-युग में आर्यवर्त (भारत) वेद-मंत्रों से गूँजता रहा, अतः सर्वत्र शान्ति रही। त्रेता-युग में पुलस्त्य जैसे ब्रह्मर्षि की सन्तान रावण हो गई। तब राम भगवान् को रावण-वध करके धर्मव्रती विभीषण को लंका-सम्राट् बनाना पड़ा। द्वापर-युग में कंस, जरासन्ध और कौरवों ने सारी मर्यादाएँ तोड़ दीं तो भगवान् कृष्ण को उनका संहार कर-कराके पुनः सत्य धर्म की स्थापना करनी पड़ी। मध्य-युग में राजकुमार गौतम ने प्रजा को दुःखी देखा तो महल-दुमहले छोड़कर विश्व-शान्ति के लिए देश-विदेश का भ्रमण करना पड़ा। कलि-युग की महिमा ऐसी कि आर्यत्व का कहीं नामलेवा भी ढूँढे न मिले। तब एक बाल-ब्रह्मचारी ने गुरु विरजानन्द से ज्ञान-दीक्षा लेकर विलुप्त वेदवाणी को खोजा-बटोरा; प्राचीन संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान को नई उज्ज्वलता प्रदान की, तभी तो श्री दयानन्द जी भगवान् कहलाए। शेष भगवानों की जीवनियाँ तो विस्तार से सुलभ हैं, किन्तु महर्षि दयानन्द अपनी ही जीवनी निरन्तर छिपाते रहे। इसी कारण उनकी कृतियाँ और सुकृत्य ही राष्ट्र की धरोहर हैं।

पण्डित रामगोपाल विद्यालंकार ने 'दयानन्द चित्रावली' लिखकर सभी आयु के पाठकों को कृतकृत्य किया है। चित्रों से सुसज्जित यह पुस्तिका स्वयं भी पढ़ें, उपहार में दें। अखिल विश्व को भ्रातृत्व का सन्देश देनेवाली यह कृति हमें समूची मानव-संस्कृति की पहचान कराएगी।

ISBN :978-81-7077-170-8
9 788170 771708
दयानन्द चित्रावली ₹ 60.00
www.vedicbooks.com

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द